

माध्वगौड़ेश्वरग्रन्थमाला का छठवाँ पुष्प

ॐ श्रीगौरांगनित्यानन्दौ जयतः ॐ



श्रीश्रीराधाकृष्ण

नम्रनिवेदन

श्री

कृष्ण समीक्षा

लेखक व प्रकाशकः--

कृष्णादास कुसुमसरोवर, (राधाकुण्ड) मथुरा

थमावृत्ति

१०००

वसन्तपञ्चमी

संभवत् १९०३

मूल्य--

प्रेम से पहना

नम्र निवेदन

वैष्णव सम्प्रदायों का प्राचीन इतिहास जिन लोगों ने पढ़ा है, वे उनके महत्त्व से पूर्ण परिचित हैं, वैष्णवाचार्यों ने किमी तरह परस्पर सहानुभूति एवं मेल मिलाप से इस वैष्णव धर्म की धवल-पताका को फहराया है—यह किसी से अविदित नहीं है। यही वृन्दावन की वह भूमि है जहां आज से लगभग दौ सौ-ढाई सौ वर्ष पूर्व या उसके पहिले चतु, सम्प्रदाय के अनुरागी वैष्णव महानुभाव एक स्थान पर बैठ कर अपने प्रभु की चर्चा किया करते थे। उनमें परस्पर कोई पक्षपात या रागद्वेष की गन्ध भी नहीं थी—वे लोग साम्प्रदायिक कलह पूर्ण समस्याओं पर कभी प्रश्न ही नहीं उठाते थे और न उन्हें इस बात की आवश्यकता ही थी किन्तु आज तो ठीक उसके विपरीत कार्य देखने में आ रहा है, इस परिवर्तन शील समय ने अपने युग प्रभाव से सबके हृदय को बदल दिया है, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ सुनता है, कोई कुछ लिखता है और कोई कुछ प्रचार करता है। वैष्णव सम्प्रदायों में भी कुछ ऐसे व्यक्ति भर गये हैं कि जिनके हृदय में सिवाय 'येन केन प्रकारेण' प्रसिद्धि प्राप्त करने की अभिलाषा के और कुछ नहीं रहा है, सत्यता से हीन प्रमाद पूर्ण अवाञ्छनीय कपोल कल्पित मिथ्या प्रचार करके अपने को गौरवान्वित करना ही उनका मानों श्रेय है।

ऐसे ही लोगों ने आज कल परस्पर द्वेषाग्नि को उत्तेजित कर रखा है। “अपने ही मुँह मियां मिट्टी” वाली बात समाज में नहीं चलती है, समाज तो शास्त्र सम्मत, गुरुजन सम्मत, लोकानुचरित, अथवा स्वानुभूत बातों को ही मान सकता। जो व्यक्ति साहित्य और इतिहास से अनभिज्ञ है—उसकी बात प्रामाणिक कैसे मानी जा सकती है। “मान न मान मैं तेरा मेहमान” वाली बात का समय तो अब व्यतीत हो चुका। भोली भोली जनता को ही बहकाया जा सकता है, विज्ञ समाज तो इन बातों से परिचित ही है।

यह सब कुछ लिखने का हमारा तात्पर्य यह है कि—सम्वत् १९६७ में निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी ब्रह्मचारी श्री त्रिहारीशरणजी वैष्णय ने “निम्बार्क माधुरी” नाम से एक वृहद्ग्रन्थ छपवाया है और उसको यत्र-तक वितरण किया गया है, इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ ने श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की एक महान कमी को बहुत अंशों में पूर्ण किया है—और अधिक अच्छा तो तब होता जब किसी विद्वान् पुरुष के हाथों से इस ग्रन्थ का संपादन होकर जनता के सामने शुद्ध सात्विक रूप से प्रगट किया जाता—किन्तु जहां “निम्बार्क माधुरी” एक परम प्रामाणिक ग्रन्थ होना था वहां वह “भानुमती का कुँनवा” और “सपेरे की पीटारी” बन गया है। अतएव जनता के सामने इस पुस्तक की वास्तविकता प्रगट करने के लिये आज हमें विवश होकर कलम उठानी पड़ी है—इसके पूर्व हमने इस बात की

अनेक चेष्टायें की कि स्वयं ब्रह्मचारी श्रीविहारी शरणजी ही या अन्य कोई निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी निम्बार्कमाधुरी में इन भयंकर भूलों का किसी तरह से मार्जन कर दें—लेकिन हमारी बात पर किसी ने भी ध्यान नहीं दीया। इस बात को तो हम भी अच्छी तरह से जान रहे हैं कि हमारी यह पुस्तक श्रीविहारीशरणजी या निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी कुछ वैष्णव को अधिक से अधिक बुरी लगेगी और इसके निराकरण के लिये प्रत्येक संभव उपाय किया जायगा, क्योंकि मनुष्य अपनी एक मिथ्या कल्पना को सत्य सिद्ध करने के लिये दूसरी अनेक भूँठी बातें बना डालता है। इसके सिवाय हमारे लिये भी कोई दूसरा रास्ता नहीं था—हम अपने पूर्वाचार्यों प्राचीन परम्पराओं एवं स्वसिद्धान्तों को हत्या खुली आखों से—खुले कानों से नहीं देख-सुन सकते थे जो भी हो हमने तो इस पुस्तक में पक्षपात रहित, रागद्वेष शून्य सत्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है क्योंकि हमें भगवान से डर है। हमने जो भी बात लिखी है वह प्राचीन ग्रन्थों के पूर्ण आधार पर लिखी है, इसे जब भी कोई चाहे देख सकता है।

“निम्बार्क माधुरी” का सूक्ष्म परिचय यह है कि उसमें निम्बार्क सम्प्रदाय के मध्यकाल के परवर्ती आचार्यों का जीवन चरित्र लिखा गया है, यह कार्य अत्यन्त स्तुत्य था। किन्तु न-जाने क्यों ग्रथकार ने सुधामिश्रित वाणी से भी अपनी विषवृत्तों का बीजारोपण किया है—जिसके द्वारा कोमलचित्त रसिक

जनों के हृदय पर भारी आघात पहुंचाया गया है। ग्रन्थकार की लेखनी भ्रम, प्रमाद, इन्द्रियापटाव, विप्रलिप्सादि दोषों से परिपूर्ण है। ग्रन्थ में अधिकतर ब्रजभाषा परायण प्राचीन तथा अर्वाचीन रसिक कवि महानुभावों को बलात् निम्बार्की सम्प्रदाय का अनुयायी सिद्ध किया गया है, श्री राधाकृष्ण की उपासना एक मात्र निम्बार्क सम्प्रदाय में ही है दूसरी सम्प्रदायों ने उसीकी छाया को ग्रहण किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय की उपासना के बराबर कोई उपासना नहीं है दूसरी सम्प्रदायों में रसिकता नहीं है, जो कोई भी रसिकाचार्य हुए हैं—वे सभी निम्बार्की थे, रसिकता की छाप एक मात्र निम्बार्क सम्प्रदाय में ही है। “निम्बार्क माधुरी” के लेखक ने स्वसम्प्रदायातिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के महापुरुषों, रसिकाचार्यों, वैष्णव भक्त प्रवरों आदि को वेतु के आधारों पर अपनी सम्प्रदाय का दीक्षित या शिष्य सिद्ध किया है। उदाहरण स्वरूप कलिपावनावतार, प्रेमभक्ति प्रदाना, संकीर्तनके पिता श्रीराधाकृष्ण मिलित विग्रह भगवान् श्री कृष्णचैतन्यदेव को श्रीमाध्व सम्प्रदाय से पृथक करके उन्हें राजसिक तामसिक त्रिगुण बना कर फिर केशव काश्मिरी का शिष्य बनाया है इस बात से मला किस सहृदय व्यक्ति को आघात न पहुंचेगा। भारत वर्ष की पढ़ी लिखी सभी सभी जनता आज गौराङ्ग महाप्रभु के नाम से अच्छी तरह परिचित है, महाप्रभु के नाम पर लाञ्छन लगाने वाले व्यक्ति अपनी नीच वृत्ति के कारण स्वयं ही पतित हैं। श्री जयदेव कवि

श्रीमहाप्रभु के अतिरिक्त श्राजयदेव कवि, त्रिद्यापति जी, महा-
 कवि केशव, देव, विहारी, कुलपति मिश्र, कृष्ण कवि, रसखान,
 ग्वाल कवि, सेनापति, वांकावति, सुन्दरि कुँवरि, नागरीदास,
 हठी, वृन्द, लाल कवि, अभयगम, व्यास जी, मीराबाई प्रभृति
 अने कों रसिक शिरोमणियों को लेखक ने अपनी स्वतन्त्र लेखनी
 से निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी बना डाला है।

मैंने यह पुस्तक अनजान भोले भक्त, रसिक जन, प्रेमी
 महानुभावों की जानकारी के लिये एवं व्यथित हृदय वाले
 साम्प्रदायिक बन्धुओं की शान्ति के लिये लिखी है, यदि मैं भी
 अन्य सम्प्रदायानुयायी बन्धुओं की तरह चुपचाप ही बैठा
 रहूँ तो भविष्य में “ निम्बार्क माधुरी ” जैसे नगण्य ग्रन्थ भी
 प्रमाण स्वरूप हो जायेंगे और तब इनका निराकरण करना
 आगे के लोगों को कठिन हो जायगा। अतः श्रद्धालु प्रेमी
 पाठकों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि पक्षपाती बुद्धि को थोड़ी
 देर के लिए दूर रख कर शान्त चित्त से इस पुस्तक का अध्य-
 यन करे और वास्तविकता को समझकर इन आधुनिक ग्रन्थों
 से दूर रहने की चेष्टा करें । इति किमधिकं विज्ञेपु—

कुसुम-सरोवर

निवेदक—

कृष्णदास

कुछ समीक्षा— ग्रन्थारम्भ में हम पाठकों के सामने आचार्य केशवकाशमीरभट्टजी के सम्बन्ध में निम्वार माधुरी कारने जो भूल की है—उनका दिग्दर्शन कराते हैं—

१. आपने निम्बार्कमाधुरी के पृष्ठ ७ में श्री श्री भट्टजी की जीवनी लिखते हुए लिखा है कि—क्योकि इनके दीक्षागुरु जगत विजयी आचार्य श्रीकेशवकाशमीरभट्टजी हैं जो अल्लाउद्दीन खिलजी के समय में वर्तमान थे । ये आचार्य तो हिन्दू धर्म रक्षा करते हुए कई एक सौ वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर प्रगट रहे” ।

इनके अन्तिम समय में श्रीभट्टजी शरणागत हुए, इन्हीं आचार्य श्रीकेशवकाशमीरभट्टजी का बनवाया हुआ मथुरा में श्रीकेशवदेवजी का जगत प्रसिद्ध मन्दिर था । जिसे औरङ्गजेब ने समूल तुड़वाकर मसजिद बनवा दिया है” ।

२. नि० मा० पृष्ठ ८ में—“उसी समय मथुरा में विश्रामघाट पर श्रीश्रीभट्टजी ने आचार्यपाद से मन्त्र दीक्षा ग्रहण की इत्यादि । इसके आगे पृष्ठ ९ में—“नैन वान पुनि राम ससि, गिनौं अंक गति वाम । श्रीभट्ट प्रगट जू जुगल सत, यह संवत् अभिराम ॥ इस दोहे से इनके ‘युगल शतक’ निर्माण का १३५२ संवत् सिद्ध होता है ।”

३. पृष्ठ ४७३ में—“श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य केशवकाशमीरीभट्टजी बंगाल एवं गैथिल देश में तीन बार पधार कर शास्त्रार्थ में दिग्विजय किये थे । तीसरी

बार चैतन्य महाप्रभु से सम्पर्क हुआ। ये आचार्य महाप्रभु पूर्ण योग सिद्ध होने के कारण दीर्घा जीवी थे। इनका जीवन काल दौ सौ वर्ष माना जाता है, इत्यादि।” इसके आगे उसी पृष्ठ में—“इन्हीं श्रीकेशव काश्मीर भट्टजी के ही शिष्यश्री श्रीभट्टजी के ब्रज-भाषा के आदि वाणीकार भी जिनका प्रादुर्भाव एवं परमधाम गमन तेरहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक है, इन्होंने तेरहवीं के अन्त में आदिवाणी ‘युगल शतक’ की रचना की थी”। इसके पहले पृष्ठ ७ पर यह लिखा है कि “इनका कविता काल तेरहवीं शताब्दी के मध्य तक से लेकर चौदहवीं के मध्य तक है”।

४. नि० मा० पृष्ठ ४६१ में ग्रन्थकार ने अपनी विशाल ज्ञानभिज्ञता का परिचय देते हुए गोविन्ददेवजी के चरित्र में श्री गोविन्ददेवजी के नाम से एक कवित्त का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—“जयति काश्मीर केशव सुभट जक्त गुरु जोति सब भुव भक्ति प्रचुर कीनी। कृष्ण चैतन्य नित्यानन्दादिक त्रिगुण बहु शिष्य करि अमित हरि मूर्ति दीनी ॥”

अब हम पाठकों के सामने श्रीकेशव काश्मीर भट्टजी के चरित्र की शुद्ध मीमांसा रखते हैं, इससे विज्ञ पाठक समझ जाँयगे कि केशव काश्मीरी भट्ट कौन थे और कब हुए हैं, तथा निम्बार्क माधुरी कार के लिखित समय—निर्णय में कितनी भूल है इसका भी पता लगेगा—नं०१ “आप निम्बार्क माधुरी ७ पृष्ठ में

बिना जाने लिख दिये हैं कि “इनके दीक्षागुरु जगद् विजयी आचार्य श्रीकेशव काश्मीरीभट्टजी हैं जो अल्लाउद्दीन खिलजी के समय में वर्तमान थे” यह असम्भव है। कारण आगे महाप्रभु के साथ इनका सम्पर्क लिखते हैं। महाप्रभु का सम्बन्ध १५४२ से १५६० पर्यन्त है। अल्लाउद्दीन खिलजी का राजत्वकाल सन् १२६५ ई० से १३०५ ई० तक है। लगभग २०० साल का व्यवधान है।

इन्होंने पृ० ७ में केशव काश्मीरीजी के जीवनकाल के सम्बन्ध में कई एक सौ वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर प्रगट रहना माना है। इस लेखके विरुद्ध आपने अपने ही ग्रन्थ के ४७३ पृष्ठ में इनका समय दौ सौ वर्ष सिद्ध किया है। इससे आपकी ही लेखनी की परस्पर विरुद्ध दो बातों से यह विषय मिथ्या साबित होता है।

निम्बार्क माधुरी में जो मथुरा के केशवदेवजी के मन्दिर के सम्बन्ध में केशव काश्मीरीभट्ट द्वारा बनावया जाना लिखा है, वह बिल्कुल मिथ्या है—क्योंकि इस बात को भारतवर्ष की सभी पढ़ी लिखी जनता जानती है कि केशवदेवजी के मन्दिर को औरछा के महाराजा वीरसिंह देव ने लगभग ३३ लाख रुपया लगाकर निर्माण कराया था—जिसको पीछे औरङ्गजेब ने तुड़वा दिया था। इस बात को सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में वा० श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल (बी० प०

एल-एल बी०) द्वारा खोज की गई संगृहीत—“श्रीकृष्ण जन्म भूमि या कटरा केशवदेव’ पुस्तक जो कि गीता मन्दिर (विड़ला) मथुरा से प्रकाशित है, इस पुस्तक में मन्दिर का इतिहास विद्वत्ता पूर्ण क्रिया है, इस पुस्तक के पृष्ठ १६ पर लिखा है। “चौदहवीं शताब्दी में केशवदेवजी का प्राचीन मन्दिर सिकन्दर लोदी ने विध्वंस कर दिया था। उसके १२५ वर्ष बाद जहाँगीर के शासनकाल में हिन्दुत्व के अभिमानी औरछा के बुन्देले राजा वीरसिंहदेव ने करीब ३३ लाख रुपया लगाकर फिरसे केशवदेव के विशाल मन्दिर का निर्माण कराया। उस मन्दिर को १६५६ ई० के लगभग टेवर्नियर और १६६३ में वर्नियर ने देख था। टोनयर लिखता है—बनारस और जगन्नाथ के बाद सबसे प्रसिद्ध मन्दिर मथुरा का है, यहाँ का मन्दिर इतना बड़ा है कि वह ६ कोस दूर से ही दिखाई पड़ता है” इत्यादि

नं० २-३—यह बात सब लोगों को मान्य है कि केशव काश्मीरीभट्टजी तथा महाप्रभु श्री गौराङ्गदेव का समय एक है— किन्तु विहारीशरणजी ने अपने आचार्य्य श्रीभट्टजी का समय निर्णय करते हुए महाप्रभुजी और दिग्विजयी के समय में दो सौ वर्ष का अन्तर डाल दिया है, अथच दोनों का सम्पर्क भी सिद्ध किया क्योंकि आपने लिखा है कि केशव काश्मीरिजी के अन्तिम समय में श्रीभट्टजी दीक्षित हुए थे। इसकी साथ ही आपने श्रीभट्टजी “ युगल शतक ” का निर्माण काल

१३५२ माना है। अब यदि ' युगल शतक ' का यह समय ठीक है तो अवश्य ही इसके १०-५ वर्ष पूर्व ही श्री भट्टजी ने दीक्षा ग्रहण की होगी, इससे यह सुनिश्चित है कि १३५२ सम्बत् का समय केशव काश्मीरीजी की अत्यन्त वृद्धावस्था का सम्प्रयाथा और चौदहवीं शताब्दी के समाप्त होते होते अवश्य ही वे भगवद्धाम की प्रस्थान कर गये होंगे इस तरह से उनके दो सौ वर्ष के जीवन का समय बारहवीं शताब्दी के समाप्ति से लेकर चौदहवीं की समाप्ति पर्यन्त ठहरता है। इधर महाप्रभु श्री गौराङ्गदेव का समय भी इतिहास प्रसिद्ध और परम प्रामाणिक है, इतिहास के पढ़ने वाले सभी लोग जानते हैं कि महाप्रभु का समय सम्बत् १५४२ में जन्म और १५६० में अन्तर्ध्यान है। अब पाठक गण ही विचार कर लें कि निम्बार्क माधुरीकार की दृष्टि से केशव काश्मीरी और महाप्रभु गौराङ्ग का मिलन समय तथा महाप्रभुजी को शिष्य करना आदि कैसे संभव होसकता है। जब कि दोनों के समय में लगभग १५० वर्ष से भी अधिक अन्तर पड़ता है। इसके अतिरिक्त लेखक का यह दावा कि केशव काश्मीरीजी तीन बार बंगाल गये थे, यह अप्रामाणिक है क्योंकि भक्तमाल के टीकाकार ने भी इनकी एकबार बङ्गाल यात्रा और उपरान्त मथुरा में दुष्टदमन स्वीकार किया है, केशवकाश्मीरीजी को अष्टाङ्गयोग द्वारा सिद्धि प्राप्त योगी ठहराना भी भक्तिसिद्धान्त विरोध है।

लेखक को अपने ग्रन्थ का पूर्वापर का ज्ञान नहीं जान पड़ता है (नं० १) पृष्ठ ७ पर इन्होंने केशव काश्मीरी भट्टजी की आयु

“ कई एक सौ वर्ष पर्यन्त ” लिखी है । इसके विरुद्ध (नं० ३) पृष्ठ ४७३ में इनकी आयु के दौ सौ वर्ष निश्चित कर दिये गये हैं । पृष्ठ ७ पर अपने श्री श्रीभट्टजी महाराज का कविता काल तेरहवीं शताब्दी के मध्य से चौदहवीं के मध्य तक माना है । इसके विरुद्ध आगे ४७३ पृष्ठ में आप श्रीभट्टजी का प्रागम्य और अन्तर्ध्यान होना तेरहवीं के मध्य से चौदहवीं के मध्यतक माना है । इस प्रकार यह ग्रन्थ परस्पर विरोधी बातों से लेखक के मत का हनन होता है । हमने तो यह एक उदाहरण रक्खा है, समूचे ग्रन्थ में इसी प्रकार की वेमेल बातें हैं ।

प्रसङ्ग प्राप्त— पंडित किशोरदासजी के सम्बन्ध की बात भी हमें विवश होकर लिखनी पड़ रही है, पंडितजी महाराज प्रतिभा सम्पन्न एवं शास्त्र निष्णात व्यक्ति हैं, और निर्वाक सम्प्रदाय के एक मात्र सम्मानित वयोवृद्ध पुरुष हैं । बात बहुत पुरानी है— लिखना तो अनावश्यक था किन्तु हम जब भी उसको पढ़ते हैं तो हृदय को चोट पहुँचाती है । आपने सम्वत् १६६५ में केशव काशमीरीजी भट्ट द्वारा लिखित गीता का ‘तत्त्व प्रकाशिका’ नामक भाष्य प्रकाशित किया था । पंडितजी ने इस भाष्य की भूमिका में पृष्ठ ३ पर लिखा है । संस्कृत और हिन्दी दोनों के उद्धरण यहां देते हैं:—

“ पुनस्तृतीयस्मिंश्च दिग्विजये समूलमुत्पाटयन्वंगस्थान्
 वैष्णवधर्मविद्वेषिणोऽगुर्नबद्वीपं च । कृत्स्नेष्वपि तत्रत्येषु

पराजितेषु विद्वत्सु शरणागताय श्रीचैतन्याय अष्टादशाक्षरीय
श्रीगोपालमन्त्रदीक्षां वैष्णवधर्मविस्तरणानुज्ञां च दत्त्वा सुखेन-
धिवसत काश्मीरदेशं ”

भाषा भूमिका ३ पृष्ठ में भी—“कुछ दिनों के पीछे तृतीय
दिग्विजयका प्रारम्भकिया और वैष्णवधर्म के प्रबन्धविरोधी
बंगदेशीय शाक्तों को निर्मूल करते करते नवद्वीप पहुँचे और
वहाँ समस्त विद्वानों को विजयकर शरणागत श्रीचैतन्य को
अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल मन्त्र की दीक्षा तथा वैष्णवधर्म प्रचार
करने की आज्ञा दे आप काश्मीर में निवास करने लगे ” ।
पाठको ! क्या मजे की बात है, आज वैवल बंगाल ही नहीं—
अपितु सारा संसार जिन श्रीगौराङ्ग देव के द्वारा प्रचारित प्रेम-
पीपूष का भिखारी बन रहा है, जिनके प्रगट होने से ही दुनियाँ
ने प्रेम वस्तु को प्राप्त किया है, जिन्होंने अनन्त दुष्टातिदुष्ट
जीवों को गले लगाकर प्रभु के भेट किया है—उन्हीं कलिपावना-
वतार प्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेव को पंडितजी की लेखनी ने बिना
सोचे-समझे केशवकाशोरिभट्ट का शिष्य तथा शरणागत बना
दिया है, बलिहारी है । जगत में प्राचीन-अर्वाचीन बड़े बड़े
साहित्यिक एवं इतिहासकारों के लिखे हजारों ग्रन्थ मौजूद हैं,
जो कि श्री महाप्रभु के विशुद्ध चरित्र के प्रतिपादक है, उन ग्रन्थों
में सर्वत्र यह लिखा है कि केशव काशोरि भट्ट ही स्वयं महाप्रभु
से पराजित हुए हैं और भट्टजी ने ही प्रभुपाद को सम्मानित

किया है। इस विषय में हम कुछ प्राचीन ग्रन्थों के और भी प्रमाण पाठकों के सामने रखते हैं—

श्रीनाभाजी कृत भक्तमाल प्राचीन ग्रन्थ है और वह सर्वमान्य है, भक्तमाल के ऊपर कवित्त बन्द टीका जो श्रीप्रियादासजीने लिखी है, वह भी सर्वमान्य है—क्योंकि वह श्रीनाभाजी की आज्ञानुसार ही लिखी गई है। भक्तमाल की सभी प्राचीन प्रतियों में श्रीप्रियादासजी के निम्न चार कवित्त मिलते हैं। सर्व प्रथम १८७३ ई० में पहिली बार भक्तमाल काशी में छपी थी उसमें ये चारों कवित्त वर्त्तमान हैं। उसके बाद कुछ निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी व्यक्तियों ने असह्य होकर भक्तमाल से इन कवित्तों को निकाल दिया और उसको पहली बार काशी में छापा। उसके दूसरे तीसरे संस्करण लखनऊ प्रभृति से छपे हैं। इसके विषय में अयोध्यानिवासी श्रीभक्तमाल के विशेषमर्मज्ञ श्रीरूपकलाजी ने बहुत छानबीन करके अपनी वार्त्तिक तिलक टीका में पृष्ठ ५६८ पर लिखा है कि श्रीकेशवभट्ट के अनुयायियों ने कवित्त ८३३ से ८३६ तक के चार कवित्त निकाल दिये हैं”। इस प्रकार ये कवित्त परम प्रामाणिक हैं, वे कवित्त यहाँ दिये जाते हैं—

“ करि दिग्विजय सब पंडित हराय दिये लिये बड़े-बड़े जीति भीति उपजाई है। फिरत चंडोल चढे गजवाजि लोल संग प्रतिभा को रंग आये नदिया प्रभाई है। डरे द्विज भारी महाप्रभु

जू विचारी तब लीला विसतार। गंगातीर सुखदाई है। बैठे
 ढिग आय बोले नम्रता जनाय रह्यो जग यश छाया नेकु सुने
 मन भाई है ॥ लरकानि संग पढ़ो चाते बड़ी-बड़ी गढ़ो तौपे रढ़ो
 कहीं सोई शीलतापै रीभिये। गंगा को सरूप कहो चहो दृग
 आगे सोई नये सो श्लोक किये सुनि मति भीजिये। तामें एक कठ
 करि पढ़िकै सुनायो अहो बड़ो अभिलाष याकी व्याख्या कर दी जिये।
 अचरज भारी भयो कैसे तुम सीखि लियो द्यो ले प्रभाव तुम्हें
 ताने दियो जो जिये ॥८३४॥ दूषण और भूषण हु कीजिये बखान
 याके सुनि दुख मानि कही दोष कहाँ पाइये कवित्त प्रबन्ध मध्य रहे
 खोटी गंध अहो आज्ञा मोको देहु कह्यो कहिकै सुनाइये। व्याखा करि
 दई नई औगुन सगुन मई आय निजधाम भोर मिले समझाइये।
 सरस्वती ध्यान कियो आइ ततकाल बोले बालपै हरायो सब
 जग जित वाइये ॥ ८३५ ॥ बोली सरस्वती मेरे ईश भगवान वे
 तो मान मेरो जैसो सनमुख बतराइये। भयो दरशन तुम्हें मन
 परशन होत सुनि सुख सोत वाणि आये प्रभु पाइये। विनै बहु
 करी करी कृपा आप बोले अजू भक्तिफल लीजे काहूँ भूलि न
 हराइये। हिये धरि लई भीर भार छोड़ि दई पुनि नई यहैं भई
 सुनि दुष्ट परवाइये ॥८३६॥

“ आप काश्मीर सुनि बसत घिश्राम तीर ” इत्यादिक।
 संख्या ८३६ कवित्त का अर्थ यह है:- जब काश्मीरजी महाप्रभुजी
 के साथ श्लोक का विचार में हार गये तब लज्जित होकर रातको
 सरस्वती का ध्यान किये। सरस्वतीजी आकर कहीं की भो
 पण्डित ! महाप्रभु तो भगवान तथा मेरा स्वामी है। मैं उनके

स्मुख में कैसे खड़ी हो सकती हूँ । तुम्हारे भाग्य हैं कि उस प्रभुका दर्शन हुआ यह सुन कर विप्रने प्रसन्न हो महाप्रभु क पास आया और बहु विनय करने लगा । प्रभु ने कहा कि भक्ति का फल प्रेम और विनय है, काश्मीरीजी ने प्रभु का उपदेश मान लिया । भीड़ भार छोड़ अपने स्थान को चल दिया ।

देखिये स्वर्गीय बाबू शिशिरकुमारघोष स्वरचित लर्ड-गौरांग नामक पुस्तक में क्या कहते हैं:— Lord Gouranga Page 63.

About this time came the "world conquering" Keshava of Kashmir in his career of victory to Nadia. फिर आगे—

To me the composition seems to have five defects which somewhat mar its undoubted beauties. So saying he proceeded to criticise the couplet very minutely. The conqueror was obliged to defend his couplet. But the defects were so glaring and pointed out by Nimai in so forcible a manner, that the author, utterly confounded, gave vent to his feelings in a storm of irrelevant exclamations. Page 67.

श्रीप्रतापसिंह महाराजजी ने भक्तकल्पद्रुम नामक भक्त-माल की टीका में लिखा है जो कि सन् १६२६ ई० में लखनऊ में छपा है ।

“भट्टजी लज्जित हो कर रात को सरस्वती का ध्यान किया सरस्वतीजी आई भट्टजी ने विनय किया कि सारे संसार में विजय कराकर एक लड़के से हराय दिया, हम से ऐसा कौन अपराध हुआ था। सरस्वतीजी ने उत्तर दिया कि महाप्रभुजी भगवत् अवतार और मेरे स्वामी हैं मेरी क्या सामर्थ है कि उनके सन्मुख बोल सकूँ और तुम्हारे भाग्य धन्य हैं कि उनके दर्शन हुए” इत्यादि ३८४ पृष्ठ देखिये। और भी—

दिविजयी के विषय में—महाराज रघुराजसिंह रीवा “रामरसिकावली में जो कि सं० १६७१ लक्ष्मीवेंकटेश्वर कल्याण मुम्बई में छपा है, क्या कहते हैं—

“सत्य अशुद्ध ज्ञानि दिवज राजा। मौन रह्यो कछु कियो न काजा।
 बहुरि कह्यो एयो तुम काली। अस कहि उठ्यो सुमिरि दिवजकाली।
 कियो आपने अपन पयाना। राति सरस्वती किय अहवाना ॥
 गिरा प्रगटि तेहिं गिरा बखानी। करहु न बाद बुद्धिभ्रम आनी ॥
 अहैं कृष्णचैतन्य मुरारी। श्रीपति कुरुपति अहैं हमारी ॥
 केशवभट्ट तबे शिर नायो। बहुरि मुदित सरिता तट आयो ॥
 गये कृष्णचैतन्य जबे तहँ। केशवभट्ट तबे पद परि कह ॥
 आयसु होय करौ प्रभु सोई। तुम भगवन्त शंक नहिं होई ॥
 कह्यो कृष्णचैतन्य सुहाये। कापि हौ कोउ दिजै हराये ॥
 भक्ति करहु तजि कै यहि भीरा। यही पढे को फल मतिधीरा ॥
 केशवभट्ट धारि शिर शासन। तज्यो भीर तहँ जिय जय आसन ॥

पृ० ६६८--६६९ देखिये । पण्डित किशनलालजी की उक्ति भी सुनिये । “जिस समय इनकी अवस्था केवल सात वर्ष की थी उस समय एक काश्मीरपण्डित केशवभट्ट बहुत से अन्य पण्डितों के साथ समस्त देश के पण्डितों से शास्त्रार्थ करते हुए इनके स्थान पर भी पहुँचे किन्तु इन्होंने उस धुरन्धर पण्डित को एक ही क्षण मात्र में पराजय किया और फिर ऐसी कृपा करी की वह भगवद्भक्त हो गया” ।

देखिये—भक्तमालभाषा ३२०, ३२१ पृष्ठ मथुरा ।

श्रीमान् अयोध्यानिवासी रुपकलाजी ने वार्त्तिक तिलक नामक एक भाषा भाष्य भक्तमाल का लिखा है । जो कि लखनऊ नवलकिशोर प्रेस में तीन संस्करण में छप चुका है ।

आप ५६६ पृष्ठ में लिखते हैं कि—

“श्री सरस्वतीजी बोलीं कि वे बालक नहीं है ईश्वर भगवत् के अवतार हैं । मेरा प्रभाव ऐसा नहीं है कि उनके सन्मुख बात करूँ । जिस प्रभु का मन, वाणी स्पर्श नहीं कर सकते उनका दर्शन तुमको हुआ । भट्टजी ने सरस्वतीजी की ऐसी सुखमय वाणी सुन महा भुजी के समीप आ सप्रेम प्रार्थना की श्रीमहाप्रभुजी कृपा कर कहने लगे” इत्यादि ।

हिन्दी जगत् के ख्यातिनामा लेखक परम तपस्वी श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी ने स्वरचित “ श्रीचैतन्यचरितावली ” में

प्रथम खण्ड के पृष्ठ १८६ से २१३ तक केशव काश्मीरीजी के श्रीमहाप्रभुजी द्वारा शास्त्रार्थ पराजय का वर्णन किया है। चैतन्यचरितावली गीताप्रेस, जैसी विश्वसनीय संस्था से प्रकाशित है। उसके पृष्ठ २०८ पर लिखा है—“सरस्वती ने स्वप्न में कहा—यदि आज तुम्हारी पराजय नहीं होती तो तुम्हारा अभिमान और भी अधिक बढ़ता। अभिमान ही नाश का मुख्य हेतु है। तुम निमाई पंडित को साधारण पण्डित ही न समझें वे साक्षात् नारायण स्वरूप हैं, वे नररूपधारी श्री हरि ही हैं, उन्हीं की शरण में जाओ। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। और तुम इस मोहरूपी अज्ञान से मुक्त हो सकोगे”। इस विषय में शिशिरकुमार घोष की उक्ति फिर देखिये।

What you consider a humiliation is in reality the highest blessing. For the Being, before whom you felt humbled is no other than Sree Krishna, my Lord. Go to Him, fall at His feet, and give your self up to Him. Thus spoke the Goddess to me. Lord Gouranga, Page 69.)

श्रीचैतन्यचरितामृत अति प्रामाणिक तथा आर्ष ग्रन्थ है। जोकि लगभग ३५० साल से भी प्राचीन है। उक्त ग्रन्थ में क्या लिखा है— देखिये।

“एइ मत निजघर गेला दुइजन । कवि राज्ये कैल सरस्वती
आराधन ॥ सरस्वती स्वप्ने तौरे उपदेश कैल । साक्षात ईश्वर
कवि प्रभुरे जानिल ॥ प्राते आसि प्रभुपदे लईल शरण । प्रभु कृपा
कैल तौर खण्डिल बन्धन ॥”

उससे प्राचीन श्रीचैतन्त्र भागवत के— आदिखण्ड नवम
अध्याय में:—

“दिविजयी यदि पराभवे प्रवेशिला शिष्य गण हाँसिवारे
उद्यत हईला ॥ सभारेइ प्रभु करिलेन निवारण । विप्र प्रति बलि-
लेन मधुर वचन ॥ आजि चल तुमि शुभकर वासा प्रति ” ॥
इत्यादि । आगे चलकर कहते हैं । कि—

“ सरस्वती बोलेन शुनइ विप्रवर । वेद गोप्य कहि
एई तोमार गोचर ॥ कारो स्थाने भाँग यदि ए सकल कथा । तवे
तुमि शीघ्र हवे अल्पायु सर्वथा ॥ जर ठाजि तोमार हैल पराजय ।
अनन्त ब्रह्माण्डनाथ तिहो सुनिश्चय ॥ आमि जर पादपद्मे निर-
न्तर दासी । सन्मुखे हई ते आपना के लज्जावासि ॥ ” इत्यादि;
श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रन्थ भी प्राचीन तथा इतिहास दृष्टि में अत्यन्त
प्रामाणिक समझा जाता है । जिसको विहाराशरणजी ने भी
“ मुकुट की लटक नामक ” पुस्तक में ६ पृष्ठ तथा १६ पृष्ठ
पर “ वेद मन्त्र तुल्य सर्वमान्य प्रणम्य सुग्रन्थ ” कहा है । उक्त
ग्रन्थ ३०० साल से प्राचीन है । उसमें कहा है कि:—

“ पूर्णब्रह्म सनातन प्रभु गौर राय । हेन ज्ञान हैल सरस्व-
तीर कृपाय । दिग्विजयी प्रभु पदे लईल शरण । ये कृपा करिल

प्रभु ना हये वर्णन ॥ दिग्विजयी वैष्णव सम्प्रदा मध्ये हय ।
 केशव काश्मीर नाम दिये परिचय ॥ श्रीनारायणोर शिष्य हंस ए
 प्रचार । सनकादि चतुः सन हय शिष्य तौर ॥ सनकेर शिष्य श्री
 नारदमहाशय । तौर शिष्य निम्वादित्य गुणोर आलय ॥ इत्यादि
 आगे गंगलभट्ट पर्यन्त कह कर 'तार अति प्रियशिष्य केशव
 काश्मीर' ॥ इत्यादि ।

श्रीमान्जोने ४६१ पृष्ठ में जो पाप पूर्ण कवित्त का उल्लेख
 किया है सो अत्यन्त निन्दनीय तथा सिद्धान्त विरुद्ध है । अहो
 पतितपावन प्रेमावतार भगवान में त्रिगुण शब्दा का प्रयोग ।
 देखिये जिन्हों ने दृष्टि मात्र ही लाखों लाखों महापतितों को पाप
 से मुक्त कर ब्रह्मा दुर्लभ महा प्रेमधन को वितरण किया है जो
 निरन्तर जीव जगत का दुःख में करुण है और अनन्तकोटि ब्रह्मा-
 ण्ड जिनके बैठक है श्रीकृष्ण प्रभु से भी करुणा का आधिभ्य
 वशतः जो महाप्रभु नाम से ख्यात है समस्त रसिक महत जन
 जिनके चरण कमल को उपासना करते हैं उन भगवान चैतन्य-
 देव को त्रिगुण कहि देना क्या अपराध नहीं हैं । क्या गोविन्द
 देवजी के नाम से छन पूर्वक इसी कवित्त को उल्लेख करने से
 महाप्रभु की प्रतिभा तथा प्रभूता दब जा सकती है । क्या बिहारी
 शरणजी, किशोरदासजी, नीलाम्बरशरणदेवगोस्वामी प्रभृति
 कतिपय व्यक्ति द्वारा इस प्रकार मिथ्या प्रचार से "माध्वगौड़े-
 श्वर" अपन अस्तित्व को बच सकता है । प्रसंगतः हम नीला-

म्बरशरणदेवगोस्वामी द्वारा रचित “केशवदिविजय सारममुच्चय” नामक ग्रन्थ की दो बात जनता के सामने रखते हैं। उक्त ग्रन्थ “श्रीमदनगोपाल” नामक प्रेस में वृन्दावन में छपा है। श्रीनीलाम्बरशरणजी उक्त ग्रन्थ के ७ पृष्ठ पर लिखते हैं कि “उसी अवसर में श्रीमदाचार्य महोदय, विद्यागर्वगर्वित पण्डित प्रचुर नवद्वीप में पहुँचे आपने अपनी महोज्ज्वल एवं पुनीत तर्कना से ममस्त विद्वन्मण्डली को जीत सम्पूर्ण नवद्वीप में अनादि वैदिक सत्प्रदाय के सिद्धान्त की विजयिनी विजयन्ती फहराई। नवद्वीप में विष्णुभक्ति परायण श्रीनित्यानन्द और श्री चैतन्य ब्राह्मण रहते थे। वे दोनों विष्णुभक्ति प्रवर्तक आचार्य (श्रीकेशवाचार्य) का आगमन सुनकर परिवारगणों के सहित उनके समीप गए और अग्नि के समान जाज्वल्यमान आचार्य महात्मा का दर्शन कर के वे आल्हाद से जायमान प्रेम से ऐसे गद्गद हुए कि इन दोनों के लोचन अश्रुपरिपूरित होगए, तदनन्तर उत्तम श्रेय के जानने की इच्छा से उन दोनों ने आचार्य महोदय को दण्डवत् प्रणाम कर के प्रमगद्गद वाणी से—

“ नमो वेदान्तसिद्धान्तसुधासंप्लावितात्मने ।

नैष्ठिकायातिगुद्भाय ज्ञानदीपाय ते नमः ॥

इत्यादि श्लोकों के द्वारा स्तुति की और यह वर माँगा—१

- (१) श्रीचैतन्य और श्रीनित्यानन्द ने अनेक श्लोकों में वर माँगा राधाकृष्णपदारविन्दयुगले भक्तिं परां देहि मे श्रीगोपालमनुं च साधनसमं वासं हि वृन्दावने

माकं भागवतै श्वरामि नितरां संगंश्च साधुष्वपि
श्रीमद्भानुसुताग्निसेवनरतिं नामावलीकीर्त्तनम् ॥

तव—“आचार्यैस्तद्वचः श्रुत्वा भक्तिभावेन यन्त्रितः ।

प्रीतस्ताभ्यां ददौ सर्वं वाञ्छितार्थमुदारधीः ॥”

अर्थात्—उदारधी, प्रसन्न, भक्तिभाव से यन्त्रित श्रीआचार्य्य ने उन दोनों के वचन सुनकर उन्हें समस्त वाञ्छितार्थ प्रदान किया । जिन वाञ्छितार्थों में मुद्रा, पौराड, नाममाला, मन्त्र (२) अष्टादशाक्षर श्रीगोपानमन्त्र, श्रीवृन्दावनविहारी श्रीराधिकाकान्त की उपासना प्रधान है । इस प्रकार श्रीनित्यानन्द और श्रीचैतन्य को शिष्य कर के उदारधी आचार्य्यचरण ने उन दोनों को स्वसम्प्रदाय सिद्धान्त (भेदाभेद) प्रदान किया । यथा—

“ नित्यानन्दं च चैतन्यं शिष्यमेवं विधाय सः

स्वसम्प्रदायसिद्धान्तं ददौ ताभ्यामुदारधीः ॥” इत्यादि ।

ठीक पाठकों सज्जनों देखिये किस प्रकार मिथ्या प्रचार हो रहा है । इस मिथ्या बात को लेकर खण्डन करिने में लोग मुझको भी मुग्ध बतायेंगे । इसलिये मैं विरत होता हूँ । सुधोगण आपदि आप समझि लेंगे । ओ नामाजी ! ओ प्रियादामजी ! ओ भक्तमाल का अनुवादक प्रतापसिंह महाराजजी ! ओ रींवारघुराजमिहजी ! ओ चैतन्य चरितावली रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी ! ओ गीता गोरखपुर के सम्पादक हनुमानप्रसादजी ! ओ शिशिरकुमारघोष ! ओ चैतन्य चरितामृत रचयिता ! ओ भक्तिरत्नाकर निर्माणा कर्त्ता ! ओ भविष्यपुराण ! ओ गौड़ीय-

वैष्णवगण ! ओ इतिहास समूह ! आप सब कहाँ हो । देखिये ! आप सब का लेख लुट जा रहा है । इनों ने किस प्रकार मिथ्या प्रचार कर रहा है । हाय ! आज हमारे प्रभु श्रीगौर, निन्यानन्द, लुट गये । इनोंने माध्वसम्प्रदाय से निकाल कर निम्बार्क सम्प्रदाय में ले जा रहे हैं । क्या इन मिथ्या प्रचारकारों सज्जनों ने श्रीमन्महाप्रभु जी को प्रमाणों देते हुए निम्बार्क की सिद्ध कर सकते हैं । कस्मिन् काल में नहीं है । केवल मिथ्या प्रयास मात्र जानना । क्या महाप्रभु जी केशव काश्मीरजी के शिष्य हो सकते हैं नहीं कभी नहीं है । क्या महाप्रभु महन्त जनों का उपास्यदेव नहीं हैं क्या महाप्रभु में त्रिगुण का स्पर्श है ? नहीं देखिये ! भक्तमाल में श्रीनाभाजी क्या कहते हैं ।

गौड़देश पाखण्ड मेंटि कियो भजन परायण ।

कृष्णासिन्धु कृतज्ञ भये अगतिन गतिदायन ॥

दशधा रस आक्रान्त महत जन चरण उपास ।

नाम लेत निष्पाप दुरित तिहि नरके नासे ॥

अवतार विहित पूरव मही उभै महत देही धरी ।

श्रीनिन्यानन्द कृष्ण चैतन्य की भक्ति दशों दिशि विस्तरी ॥

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के “ पतितपावनअवतार ” त्व

समन्ध में टीककार प्रियादासजी की मनोहारिणि उक्ति सुनिये ।

श्री कृष्णचैतन्य नाम जगत प्रगट भयो अति अभिराम ले

महत देही करो है । जितो गौड़देश भक्तिलेश हू न जाने कोऊ

सोऊ प्रेमसागर में वोरयो कहि हरि है । भये शिर मोर एक एक

जगत्तरिवे को धारिवे को कौन साखी पोथित में धरी है, कोटि

कोटि अजामिल वारिडारे दुष्टतापै ऐसे हू मगन किये भक्ति भूमि भरी है” जिनके एक एक भक्त ही एक एक जगत को उद्धार कर सके हैं जो कोटि कोटि अजामिल से भी महापापीयों को पाप से मुक्त कर प्रेमधन दिये है ऐसे भगवान गौरांगदेव में त्रिगुण शब्द का लेखना अत्यन्त निन्दनीय बात है। श्रीनिम्बार्कमतानुयायी वैष्णवदासजी नामक महात्मा ने १८०० सम्बत के लगभग में भक्तमाल की एक टिप्पणी लिखी है। आप इहाँ पर प्रभु की भगवत्ता स्वीकर किये है। मीरा के पद और अन्यान्य प्रमाण उठा कर

“ अब तौ हरिनाम लौ लागी ।

सब जगको यह माखन चोरा नाम धरयो वैरागी ।

कहँ छोड़ी वह मोहन मुरली कहँ छोड़ी सब गोपी ।

मूँड मुडाई डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी ॥

मात यशोमत प्राग्बन कारन बाँधे जाको पाँव ।

श्याम किशोर भये नव गेरा चैतन्य जाको नाँव ॥”

“ आसन्वर्णा स्त्रयो ह्यस्य ” “ कृष्णवर्णा त्विषा कृष्णां ” इत्यादि “ गौर नाम और गौर तनु अन्तर कृष्ण स्वरूप ” इत्यादि । ” प्रभु की भगवत्ता सिद्ध किये ।

प्रियदासजी की जो चारि कवित्त कुछ निम्बार्कीयों ने उठा देकर छापी है उक्त चारि कवित्त किन्तु वैष्णवदासजी ने मानी है। क्यों कि उस पर भी उनकी टिप्पणी है। हस्त लिखत प्राचीन पुस्तक में मौजूद है।

देखिये पाठक गण ! कहां तो निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी नौष्णव-
 दामजी का श्री महाप्रभु को साक्षात् राधाकृष्ण स्वरूप बताना
 और कहां इसके ठीक विपरीत श्रीबिहारीशरणजी ने श्रीमहाप्रभु
 को त्रिगुण स्वरूप मिद्ध किया है। आपने 'निम्बार्क माधुरी' में
 गोविन्द देवजी के नाम से जो कवित्त उठाया है-- वह न केवल
 अयथार्थ और अप्रमाणिक ही है, अपितु लोक-दृष्टि में निन्दनीय
 भी है। दूसरी बात-गोविन्द देवजी का गोलोक वास आपने
 १८१४ सम्वत् लिखा है--इससे ये बहुत ही नजदी की ठहरते हैं।
 दूसरी तरफ इनसे जो प्राचीन आचार्य हुए हैं उन्होंने महाप्रभु के
 सम्बन्ध में क्या लिखा है सो भी देखिये। श्रीप्रियादामजी का
 कवित्त काल १७६६ संवत् है। इनसे भी अधिक प्राचीन
 श्रीनाभाजी के छप्पे हैं--जिन्होंने श्री महाप्रभु को साक्षात् अवतार
 माना है, इसके अलावा सैकड़ों प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थ-समूह
 मौजूद हैं, जिनमें श्रीमहाप्रभु का पूर्णरूपेण अवतारत्व सिद्ध
 किया है। ग्रन्थविस्तार भय से हम यहां सब को नहीं दे सकते
 अब हम इस निन्दास्पद प्रसङ्ग से विरत होते हैं--कारण कि
 यह बात कानों से सुनने लायक भी नहीं है।

रही बात केशवकाश्मीर भट्टजी के सम्बन्ध की--सो
 तो हम उसके शतश, प्रमाण दे चुके हैं। इसमें हमने अपनी
 बनावटी बात कोई नहीं लिखी है सभी प्रमाण प्राचीन एवं
 अर्वाचीन ग्रन्थों के ही दिये हैं, इतने पर भी यदि किसी को
 हमारा यह सत्य सिद्धान्त ग्रहण न हो तो समझना चाहिये कि

दुराग्रह है। हां ! यह बातें अवश्य मान्य हो सकती हैं कि एक ही नाम के भिन्न-भिन्न व्यक्ति हो। अब हम पाठकों के सामने 'निम्बार्क माधुरी' की दूसरी भयंकर भूलों को रखते हैं, जो कि श्रीविहारीशरणजी ने अपने ही आचार्यों के सम्बन्ध में गलतियाँ की हैं—उन्होंने पृष्ठ १६३ में लिखा है कि—“इस प्रकार ये संवत् १५३५ में अवतरित होकर २५ वर्ष तक घर में रहने के पश्चात् संवत् १५६२ में विरक्त वैष्णव होकर संवत् १६३२ तक निधुवन में विद्यमान रहे”। इसके आगे पृष्ठ २०० पर लिखा है कि—“वृन्दावन में श्री नित्यानन्द श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का आगमन हुआ था। स्वामी जी के निकट भी गये। उसी समय राधाकुण्ड निवासी श्री रघुनाथदास अपनी मानसिक शृङ्गार में खोई हुई प्रियाजी की पुष्प वेणी दृढ़ते वहीं आपहुचे। स्वामीजी ने वहीं अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पता बताते हुए उनकी मानसिक सेवा की समस्त व्यवस्था बर्णन करदी”।

देखिये पाठक गण ! क्या कुकल्पनामयी निराधार बाणी है, इन महाशय ने न जाने क्या समझ करके इस प्रकार इस ग्रन्थ को लिखा है—आपने ४६१ पृष्ठ में श्री गोविन्द देवजी के कविता के अनुसार श्रीमहाप्रभु को केशवकाशमीरी का शिष्य लिखा है। अब साठक विचार करें कि श्रीकृष्णचैतन्य और श्री नित्यानन्द केशवकाशमीरी के २५० साल पीछे हरिदासजी से कैसे मिले क्योंकि विहारीशरणजी के मत से केशवकाशमीरी को परमधाम का समय करीब तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में

ठहरता है। और स्वामी हरिदासजी की निधुवन में स्थिति उपरोक्त वाक्य के अनुसार १५६२ से १६३२ तक होती है। इस तरह लगभग २५० वर्ष का अन्तर पड़ता है यदि स्वामी हरिदासजी महाप्रभु का मिलन ठीक है तो केशवकाशमीरीजी द्वारा महाप्रभु को शिष्य बनाना झूठा होता है। यह इनकी परस्पर विरोधी बात है। दूसरी बात जो उन्होंने--राधाकुण्ड से दास गोस्वामी का वृन्दावन आगमन और उसी समय श्री कृष्ण-चैतन्य देव तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु का वृन्दावन में आगमन और स्वामी हरिदासजी से मिलन—एवं उनके द्वारा दास गोस्वामी को प्रियाजी की बेणी का पता बनाना तथा मानसी सेवा की व्यवस्था वर्णन करना आदिक सब गाथा निर्मूल है, यह केवल बालभाषितवत् मिथ्या है। क्योंकि श्रीमहाप्रभु के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु का ब्रज में आगमन किसी भी आर्ष ग्रन्थ में नहीं है, गौराङ्ग प्रभु के चरित्र से अवगत भारतवर्ष की सभी जनता इस बात को जानती है। केवल बलभद्रभट्टाचार्य और उनके एक भृत्य महाप्रभु के साथ ब्रज में आयेथे दासगोस्वामी के सम्बन्ध में बात यह है कि वे श्रीमहाप्रभु के अन्तर्धान होने के बाद उनके असह्य विरह में रोदन करते हुए ब्रज में देहपात करने के लिये आये थे। रघुनाथ दास गोस्वामी के ब्रजा गमन का समय स० १५६० होता है। उस समय श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामी ने उन्हें समझा बुझा कर रक्खा है। कदाचित कोई “निजमत-सिद्धान्त” की बात को लेकर यह कहे कि उन्होंने भी उपरोक्त

बात को ही लिखा है तो इसके सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कहेंगे कि प्रथम तो यह कोई प्राचीन ग्रन्थ नहीं, यह करीब सौ वर्ष का ग्रन्थ है। दूसरे उसका तो नाम ही 'निजमत सिद्धान्त है' क्योंकि ग्रन्थकार ने पृष्ठ १६६ पर स्वयं यह स्वीकार किया है कि

“यहनिजमत सिद्धान्त को मध्यखण्ड निर्द्धार।

किशोर दास वरुण कियो: निज मन मति अनुसार॥

मिश्र बन्धुओं ने भी इस ग्रन्थ को मन गठित ही माना है। स्वमन गठीत सिद्धान्त यदि प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार हो तो मान्य हैं “निजमतसिद्धान्त” सर्वांश में मन गठित है यह मेरा हठ नहीं है परन्तु उस उस स्थल में अवश्य मन गठित मानूंगा कि जिस जिस स्थान में उसमें प्राचीन ग्रन्थ तथा इतिहास का विरोध हो। आप २२४ पृष्ठ में लिखने हैं कि श्री विपुलविठ्ठल देवजीने गृह भक्तों को परित्यागकर वृन्दावन आगये। और यहाँ श्री आशुधीरदेवजी ने इन्हे स्वामी हरिदासजी को शिष्य करने के लिये आज्ञा दी स्वामीजी ने गुरु आज्ञा पाकर इन्हे सं० १५५० में श्रीगोपाल-मन्त्र राज की दीक्षा देकर अग्रहन शुक्लपश्चमी को सर्व प्रथम शिष्य की। इस समय इनकी अवस्था तीस वर्ष की थी १६३१ में वृन्दावनस्थ सन्त महन्तों ने आग्रह कर इन्हे स्वामीजी की आचार्य्य गद्दी पर आरूढ़ की। चालिस वर्ष तक श्रीधाम में निवास करते हुए विद्यमान रहे”।

२२४ पृष्ठ में — “घर सम्बन्धित नाते में स्वामीहरिदाजी

के मामेरा भ्राता लगते थे । अर्थात् मामा के पुत्र थे और इन से कह वर्ष उम्र में बड़े थे” ।

देखिये ! जब २५ साल उमरमें विरक्त होकर स्वामीजी निधुवन गये थे तो अवश्य विट्ठलविपुलदेवजी वयो वृद्ध थे । स्वामीजी का निधुवन गमन १५६२ सं० में है । १५५० में निधुवन में विट्ठलविपुलदेवजी को मन्त्र देना असम्भव है । कारण उस समय स्वामीजी घर पर थे । निधुवन में मन्त्र दीक्षा देना विहारीशरणजी ने लिखा है ।

१६३१ में विट्ठलविपुलजी गद्दी पर बैठे १५५० में दीक्षा हुई और ४० साल वृन्दावन में रहे सो १५६० में विट्ठलविपुलजी का देहान्त समय है । सो १६३१ में गद्दी पर कैसे बैठे ? और भी आप २२४ पृष्ठ में जो लिखे है कि—“चालीस वर्ष तक श्री धाम में निवास करते हुए विद्वयमान रहे । स्वामीजी के नित्यधाम प्रस्थान के पश्चात् १६३१ सं० में वृन्दावनस्थ सन्तमहन्तों ने आग्रह कर इन्हे स्वामीजी की आचार्य्य गद्दी पर आरुढ़ की । पाठकगण देखिये—जब सं० १५५० में दीक्षा हुई और ४० साल धाम में रहे तो १५६० सं० में ७० साल की उमर में देहत्याग है फिर १६३१ सं० में गद्दीपर कैसे बैठे । ४४४ पृष्ठ में—“इन्होंने [स्वभूदेवाचार्य्य] वि सं० १५४५ में १२५ वर्ष की दीर्घायुभोग कर अन्त में नित्यधाम को प्राप्त किया । १६ पृष्ठ में स्वभूदेवाचार्य्यजी को श्रीहरिव्यासजी के शिष्य लिखा है । देखिये १२५ साल बाद देने पर १४२० में जन्म ठहरता है ।

करीब १०० साल के व्यवधान में गुरु शिष्य का सम्बन्ध होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। अतः दोनों का सम्बन्ध गलत है ७६ पृष्ठ में परशुरामदेवजी का जन्म सम्बत १६ शताब्दी लिखा है और २७ पृष्ठ में हरिव्यासजी का शिष्य परशुरामदेवजी को बताया। जब १३२० में हरिव्यासजी का जन्म है तो २०० साल पिछे परशुरामजी का शिष्यत्व असम्भव है। यहाँ परभी दोनों का समय गलत ठहरता है।

१२७ पृष्ठ में तत्ववेत्ता जी का जन्म सं० १५५० लिखा है करीब १५०० सम्बत से पिछे वृन्दावन में जाकर हरिव्यासदेवजी के शिष्य होना असम्भव है। कारण करीब २०० साल का व्यवधान पड़ता है। मैं गुरु शिष्य सम्बन्ध का विचार नहीं करता हूँ परन्तु विहारीशरणजी के इस ऐतिहासिक समय संग्रह की सब भूलों को जनता के सामने रखता हूँ।

अब रहे विद्यापति जी। आप ४७३ पृष्ठ में लिखते हैं कि “ये [श्रीभट्टजी] भी केशवकाशमीरजी के संग दिग्विजय में हजारों शिष्यों के संग जाया करते थे इन की वाणी देखने तथा प्रेरणा से विद्यापति के हृदय में हिन्दी भाषा में रचना करने की चाह हुई हो सम्भव है। युगलशत के भाव इनके पदावली के अनेक पदों में स्पष्ट झलकते हैं और श्रीजयदेवजी के रसविशेष से इनके रस खूब मिलते हैं कई एक स्थान पर तो इन्होंने गीत गोविन्द के ही भावापहरण करके तथा शब्द समूह

भी रखदिये हैं। जो कुछ होय गीत गोविन्द के ही आधार पर इन्होंने पदावली निर्माण की है। श्रीजयदेवजी श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायानुजायी थे यह अकादम्य सिद्ध हो चुका है' इसलिये ये इस सम्प्रदाय के अनुयायी अवश्य हुए। मैथिल के विद्वान् पण्डित श्रीभागीरथजी भा न्याय वेदान्ताचार्य्य वृन्दावन पधारे थे उन्होंने कहा था कि "श्रीविद्यापति अवश्य निम्बार्कीय थे क्योंकि इनके वंशधर अभी तक निम्बार्कीय तिलक करते हैं और उनके यहां श्रीमद्भागवत पूजा में हैं उस पर मंगलाचरण में श्रीनिम्बार्कीय लिखा है।"

४७२ पृष्ठ में--"राजा शिवसिंहदेवजी से इन्हें विसर्पोग्राह प्राप्त हुआ था उसका दानपत्र इनके वंशजों के पास है जिसमें लक्षणसेन प्रचारित सन् २६३ लिखा है जो सम्वत् १४५५ सम्भव हो सकता है लक्षण सेन सन् २६३ में राजा शिवसिंह गद्दीपर आरोढ़ हुए, जिसका सम्वत् वि० १४५६ होता है। शिवसिंह के दरबार में राज्यप्रतिष्ठा कवि थे" इत्यादि।

४७४ पृष्ठ में--"इनकी पदावली बाबू नगेन्द्र नाथ गुप्तने सन् १६२७ में सम्पादित कर इण्डियन प्रेस में मुद्रित करवाइ थी भाषा विहारी है और कुछ संस्कृत और बंगला के शब्द भी आगे हैं इन्होंने स्वकीया परकीया दोनों रसों का अवलम्बन लिया है। देखिये पाठक गण! -- नगेन्द्रनाथगुप्त कर्त्तक संकलित तथा प्रकाशित विद्यापतिठाकुरकी पदावली भी 'बंग साहित्य परिषद्'

से छप चुकी । जिसका हिन्दी अनुवाद इण्डियन प्रेस इलाहाबाद में छपा है, उसकी भूमी का में लिखा है—

“शिवसिंह का जन्म लक्ष्मण सेन संवत् २४३ तथा विक्रम सम्वत् १४०६ है । विद्यापति उससे दो साल बड़े हैं । अतः २४१ लक्ष्मण सेन सं० विक्रम सं० १४०७ में उनका जन्म है । शिवसिंहका राज्यारोहण काल लक्ष्मण सेन सं० २६३ वि० १४५६ होता है ।” देखिये— जब १३५२ सं० में जुगल मत्तक का निर्माण है और उस समय में ही केशवकाश्मीरीजी की अवस्था वाद्विक्रय है अथ च अन्तिम काल है क्यों कि विहारीशरणजी कह चुके हैं कि इनके अन्तिमकाल में श्रीभट्टजी शरणागत हुये थे ता विद्यापति के समय में नित्यधाम को पधार गये थे । फिर कैसे उन्होंने दिग्विजय की और कैसे वे मिथिला पुरी पधारे, जिसमें कि उनके साथ श्री भट्टजी भी गये थे । विद्यापति जी को निम्बार्की सिद्ध करना आकाश के तारे तोड़ना है । एकतमाशे की बात यह है कि आप श्री भागीरथी के कहने पर ही यह पुष्ट कर रहे हैं कि विद्यापति जी निम्बार्की थे अगर कहाँपं० भाने वाज्ज-मौके पर सारी दृष्टियाँ को ही निम्बार्की बता दिया तो सब केसब निम्बार्की हो जायेंगे । वंशधरों के निम्बार्की तिलक धारण करने मात्र से विद्यापतिजी निम्बार्की नहीं हो सकते । क्या ? अगर विहारीशरणजी निम्बार्की तिलक करते है तो वे इस बात का पक्का सबूत देंगे कि उनके पूर्वज भी सब निम्बार्की थे ? सम्प्रदायों का किसी को ठेका नहीं, है वह तो अपनी अपनी

अभिरुचि की वस्तु है। ऐसे सैकड़ों लोग मौजूद हैं कि जिनके पूर्वज पहले अन्य सम्प्रदाय के थे और आज उनकी सन्तानें दूसरी सम्प्रदायों में शिष्य हो रही हैं और एक बात यह भी है कि श्रीमाध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय में वक्रेश्वर, श्यामानन्द, गदाधर पण्डित आदिक परिवार तिलक भी निम्बार्कीय तिलक सदश ही हैं तो माध्वगौड़ीय वैष्णव भी कह सकते हैं कि विद्यापतिजी के तथा उनके वंशधर लोग गौड़ीय हैं अतः ऐसी युक्तियाँ प्रमाण विरुद्ध हैं। रही बात भागवत में “निम्बार्काय नमः” लिखने की सो तो ठीक है, अगर आजकल उनके वंशधर निम्बार्की होंगे तो अवश्य ही अपनी साम्प्रदायिक छाप रक्खी होगी। इससे विद्यापति जी को निम्बार्की सिद्ध करना असंगत है। गीत गोविन्द के आधार पर इन्होंने पदावली निर्माण की है जयदेव निम्बार्की थे इसलिये ये भी निम्बार्की हैं” यह बात भी बालभाषित है। कारण चराडीदास, विट्टलदेवजी, प्रबोधानन्द प्रभृति हजारों कवियों ने गीत गोविन्द के आधार पर काव्य बनाये हैं तथा कोई कोई स्थल में बिलकुल ही गीत गोविन्द की भाषा को धर दिया गया है तो क्या वे सब निम्बार्की हैं। देखिये जयदेवजी के काव्य तथा विद्यापतिजी के काव्य में खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा वासकसज्जा, प्रभृति अष्टनायिकाओं का वर्णन है। युगलसतक तथा महाबाणी में तो केवल नित्य विहार का वर्णन है गीत गोविन्द में प्रथम सर्ग में श्री राधिका

के बिना गोपीयों का साथ श्रीकृष्ण का रासविहार वर्णित है। युगलसतक तथा महावाणी में एसी बात कहाँ हैं और भी विद्यापति के पद्य में--सर्वात्र परकीया स है।

“शुनह नागर क्लान । राजकुमारी राधिका नाम ।
जटिला बधू नवीन बलि ।” अन्यत्र--“जटिला शाश फुकरित
हि बोलत” इत्यादिक श्रीराधाकी परकीया भावमयी वाणी
जुगल सतक तथा महावाणी में कहीं भी नहीं है। नगेन्द्रनाथ-
गुप्त ने स्वभूमिका में लिखा है जिसको विहारोशरणजीभी
प्रमाण स्वरूप मानते हैं।

“विद्यापति के पृथ्वी पुरुषों का नाम सुनने से जाना जाता
हैं कि वे सब शैव हैं। पिता का नाम गणपति तथा पूर्वपुरुषों
का नाम चण्डेश्वर वीरेश्वर धीरेश्वर प्रभृति हैं। विद्यापति
प्रतिष्ठित शिव मन्दिर की बात भी सुनने में आती है। कुलदेव
विश्वेश्वरजी का मन्दिर भी बहुत दिन तक रहा। विजितपुरमें
भी जहाँ विद्यापति का देहान्त हुआ था वहाँ शिवमन्दिर
प्रतिष्ठित है। शिवजी के सम्बन्ध में विद्यापति के पद भी हैं--

“आन चान गन हरिकमलासन सवे परिहरि हमें देवा ।

भक्त बछल प्रभुवान महेश्वर इ जानि कईलि तुअ मेवा ॥

विद्यापति भाण-इत्यादि। विद्यापति के निवास विसर्पी ग्राम का
उत्तर में भेड़वा ग्राम में राणेश्वर महादेव के मन्दिर है, ये उन्हीं
की उपासना करते थे, विद्यापति परम भक्त शैव थे। भक्ति से
प्रसन्न होकर स्वयं शिवजीने रूप छिपाकर दासत्व कर्मा किया

हैं। प्रकाश होने पर शिवजीअन्तर्द्धान हो गये उस समय विरह से विद्यापति जी व्याकुल होकर पद बनाने लगे कि—“उबना हे मोर कतय गेला, कतए गेला शिव कितहु भेला” इत्यादि विद्यापति निम्बार्की होते तो अवश्य ही पदों में किसी स्थल में स्वसम्प्रदाय का या आचार्यों का नाम रखते। किम्बा नगेन्द्रनाथ-गुप्त जो अवश्य लिखते, देखिये—नगेन्द्रनाथ गुप्त लिखते हैं कि विद्यापति के हस्ताक्षर की भागवत जो कि दरभंगा से १२ क्रोश दूर पर तरौणी (तरुवनी) ग्राम में जयनारायणभाँ कि पत्नी के घर में है जिसको हम और कवोश्वर श्री चण्डाभाँ (दरभंगा महाराज का संस्कृत पुस्तकालय के रक्षक और वैयाकरण पण्डित परमेश्वरभाँ प्रभृति देख आये हैं।” देखिये उन्होंने पुस्तक का पूरा परिचय दिया है। यदि उसमें “निम्बार्काय नमः लिखा होता तो अवश्य ही गुप्तजी भूमिका में लिख देते। अतः विद्यापति को निम्बार्की बताना मनमानी खेचतान की बात है इस पर हम भी कहेंगे कि—हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि से तो विद्यापति श्रीजयदेवजी के अनुयायी थे और श्रीजयदेव जी माध्व गौड़ीय वैष्णव अवश्य हैं अतः विद्यापति भी माध्वगौड़ीय ठहरते हैं इस विषय में रामचन्द्र शुक्ल वगैरह भी सम्मत हैं। अब हम जयदेवजी के सम्बन्ध में लिखते हैं। देखिये “मूलं नास्ति कुतः शाखा” जब जयदेवजी निम्बार्की नहीं हैं तो विद्यापति को निम्बार्की सिद्ध करना हास्यास्पद है” देखिये—पृष्ठ १ में आप

लिखते हैं कि “संस्कृत भाषा के कवि चक्रवर्ती भक्तराज श्री-जयदेव का जन्म बंगाल में स्थित किन्दुविल्व नामक ग्राम में हुआ था, यह स्थान अद्यावधि पर्यन्त श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के विरक्त महन्त के आधीन है। इनके गुरु का नाम यशुदानन्दन देव था। ये उस समय के एक प्रसिद्ध महात्मा थे और ब्रज में निवास करते थे। श्रीहरि आज्ञा से इन्होंने किन्दु विल्व में ही जाकर श्रीजयदेवजी को शिष्य किया था। इसके आगे पृष्ठ २ में लिखते हैं। “बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के दरबार में इन्होंने बड़ी प्रसिद्धि पाई। राजा लक्ष्मणसेन का समय सन् ११७० ई० से १२२७ ई० है (सम्बत् १२२७ से १२८४)। अब यहाँ विचारणीय यह है इतिहास में हमें ऐसा मिलता है कि लक्ष्मणसेन १२५५ सन्वत् में वस्त्यार खिलीज के पुत्र अस्त्यार खिलीज से परास्त होकर भागे और उकल (उड़ीसा) के राजा के आधीन होकर रहे।

“११०१ ख्रिष्टाब्द से ११२१ ख्रि० पर्यन्त लक्ष्मणसेन का राजत्वकाल।” बंगसेनराजाशीर्षक प्रबन्ध नामक ग्रन्थ में डा० राजेन्द्रलालमित्र ने माना है। ११०७ ख्रिष्टाब्द में (विद्यापति शीर्षक प्रबन्ध में राजकृष्ण मुखोपाध्याय, ११०६ ख्रिष्टाब्द में “आईन आकबरी” ने माना है, विद्वान् धुरन्धर अमलोकशास्त्रीजी ने अष्टादश सिद्धान्त की टीका की भूमिका में परम्परा (च) पृष्ठ में अपर एक कोई जयदेव का नाम उल्लेखपूर्वक सम्वत् १०६६

से ११५२ सं० पर्यन्त समय दिया है। यदि ये गीतगोविन्दकार जयदेव ही हैं तो इतिहास की दृष्टि में मिथ्या है कारण समय नहीं मिलता है। समस्त इतिहास के मत से निर्णित हैं कि जयदेव लक्ष्मणसेन की सभा के पण्डित हैं। लक्ष्मणसेन का राजत्वकाल १२२५ सं० से १२८४ सं० पर्यन्त विहारीशरजी भी माने हैं। निजमतसिद्धान्त में श्रीकिशोरदासजी ने जिन जयदेव जी का उल्लेख किया है सो अवश्य और कोई जयदेव होंगे कारण जयदेव नाम से कितने ही कवि हो गये हैं। निजमत-सिद्धान्त का भध्वखण्ड १५ पृष्ठ में देखिये।

जगन्नाथ ते योजन ठारा । किन्दुविल्व इक ग्राम सुचारा ।

ता मधि वसत बिप्र शिवरामा । द्वारावती तामुकी वामा ॥

सो वह भक्त अनन्य प्रण जगन्नाथ पति जान ।

लक्ष्मीवत तिनते रमी तिन दीन्हो रतिदान ॥

हरिते पुत्र प्रगट जयदेवा । द्वादश तिलक अंग शशि भेवा ॥

इत्यादि ॥ परन्तु गीतगोविन्द के उपसंहार में स्वयं जयदेवजी लिखते हैं कि--

श्रीभोजदेवप्रभवस्य वामादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य ।

पराशरादिप्रियकन्धुकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥

पिता भोजदेव माता वामादेवी सर्वत्र प्रसिद्धि है। शिवराम पिता द्वारावती माता कहीं पर नहीं है। और केन्दुविल्व जगन्नाथजी से लगभग २०० क्रोश दूर में हैं। निजमतसिद्धान्त में तो १८ योजन लिखा है। सम्भवपुरीजिला में कोई स्थान होगा 'और

निजमत सिद्धान्त में प्रतिपाद्य जयदेवजी अवश्य गीतगोविन्द रचयिता जयदेवजी से अन्य हुए हैं। स्वयं ग्रन्थकर्त्ता स्वरचित निजमत सिद्धान्त को इस प्रकार परिचय देते हैं कि—“यहनिजमतसिद्धान्त को मध्यखण्ड निस्तार। विशोरदास वर्णन कियो निजमन मति अनुसार” मिश्रवन्धु विनोद ने भी तृतीयखण्ड १०८६ पृष्ठ पर इस प्रकार लिखा है। “किशोरदास पिताम्बरदास के शिष्य निम्बार्क सम्प्रदाय के ग्रन्थ निजमत सिद्धान्त सार, गणपति माहात्म्य, अध्यात्मरामायण, रचनाकाल १६०० विवरण-प्रथम ग्रन्थ में भक्तों के विस्तार पूर्वक कथन एवं मन के सिद्धान्त वर्णित है”। इत्यादि भला मन के सिद्धान्त कैसे सर्व प्रमाण हो सकता है। श्रीबिहारीशरणजी १ पृष्ठ निम्बार्कमाधुरी में लिखते हैं कि—“उनके गुरु यशोदानन्दनजी वृन्दावन से श्रीकृष्ण आज्ञा पाकर केन्दुविल्व में गये और वहाँ जयदेवजी को शिष्य किये”। और निजमतसिद्धान्त में लिखा कि जगन्नाथजी की आज्ञा पाकर यशोदानन्दनजी ने केन्दुविल्व में शिष्य किया। अतः परस्पर विरोध है। और देखिये श्रीपद्मानन्ददास शास्त्री जो सम्प्रति राधाकुण्ड में निवास कर रहे हैं और जो वंग सम्बत १३२७ से १३२६ पर्यन्त केन्दुविल्व में मौनेजिग किये हैं उनसे पूरा हाल इस प्रकार मिला है। “जयदेवजी का प्राचीन मन्दिर इस समय प्राचीन इमारत रक्षा आईन के अनुसार गवर्णमेंट का हात में है, उस मन्दिर में राधा विनोद

जी की मूर्त्ति विराजमान है । तत्पार्श्ववर्त्ती एकमन्दिर व गद्दी है । जिसमें गौरनित्यानन्द तथा सीताराम की मूर्त्ति विराजित है । देवोत्तर सम्पत्ति जितनी है वह सब महाप्रभु तथा सीताराम जी के नाम से हैं; गौर नित्यानन्द विग्रह प्राचीन जिसको राधारमणदासजी नामक जनैक गौड़ीयवैष्णव ब्रज से आकर गद्दी का साथ स्थापन किये है । मध्य में भरतदास नामक रामानन्दी मशहूतमा ने सीताराम मूर्त्ति की स्थापन की है । कुछ रोज पहिले दामोदरदामजी नामक (बिहार प्रान्त के) अपने को ब्रजवासी परिचय देते हुए वहाँ के महन्त हुए थे । किन्तु उनका अत्याचरण से जुद्ध होकर लोगोंने अस्त्र द्वारा कत्ल कर दिया अब उनके वंशज भ्रातृषुत्र रासबिहारी ब्रजशरणजी गद्दी पर बैठे है । उखड़ा तथा वर्द्धमान के महन्त गणों ने आपस में युक्तिकरके वहाँ की उत्तम व्यवस्था करदी है” इत्यादि । वीरभूमनिवासी धर्मप्रचारक फुलदामल्लिक अपने वीरभूमी नामक पत्रिका में लिखते है कि— प्रायःआडाइ शत कि तिनशत वन्सर पूर्वे राधारमण ब्रजवासी नामक जनैक साधु श्रीधाम वृन्दावन हइते तीर्थदर्शने आसिया एखानेइ अब स्थिति करेन । केन्दुविल्वेर गद्दी ताहारइ प्रतिष्ठित । राधारमणरे परवर्त्ती महान्त गणरेनाम भरतदास, प्यारीलाल, हीरालाल, फूलचँद, रामगोपाल, सर्वेश्वर, दामोदर । दामोदर ब्रजवासी आत-तायीर हस्ते निहत हइले ताहार चेला वर्त्तमान गद्दीर अधिकार प्राप्त हईया छेन । ‘[पत्रिका वीरभूमी ज्येष्ठ१३३५]’प्यारीलालजी, हीरालालजी, फुलचँदजी रामगोपालजी, गृहीवेश ब्रजवासी थे

एसा पञ्चाननशास्त्री जी कहते थे । अतः विहारीशरणजी ने जो लिखा कि जयदेवजी के समय से वहां पर निम्बार्की विरक्तवैष्णव वास करते आ रहे हैं सो केवल मिथ्या जानना । वास्तविक जयदेवजी माध्वसम्प्रदायी थे ।

श्रीजयदेव वंशोद्भव श्रीरामरायगोस्वामी कृत गौरविनो-दिनी नामक वृत्तितथा तद्भ्राता प्रभु चन्द्रगोपालप्रणीत राधामाधव नामक उसका भाष्य है । दोनों अचिन्यभेदाभेद सिद्धान्त युक्त ब्रह्मसूत्र की चतुः सूत्री पर लिखित है । वृन्दावनस्थ श्री श्री परिडत बाबा रामकृष्णदासजी की आज्ञा से पुरी-स्थित माध्व गौड़ेश्वरसम्प्रदाय प्रधान पोटाधीश्वर राधकान्त मठके महन्त श्रीराधाकृष्णदास जीने छपाया है उसके १०६ पृष्ठ में ।—

निकुशजस्थां प्रियां नौमि चारचन्द्रावलीं परां ।

गोस्वामी रामरायो ऽ हं जयदेवस्वरूपिणीम् ॥

शाके षट्सप्ततिमनौ कार्तिके पूर्णिमादिने ।

वंशीवटतटे वृत्ति वृन्दारण्ये सुपूरिता गौरविनो०)

१२७ पृष्ठ में— चतुः सूत्रीवृत्ति समापयन्निज पूर्वाचार्य्यचरणं श्रीप्रभुजयदेव गोस्वामिनं प्रणमति । शाके शालिवाहनीये मनव-श्रतुर्दश संख्यका स्ततः सप्त संख्या पुनश्च षडेवं मिलिताः १४७६ शाके श्रीवृन्दावनधाम्नि श्रीवंशीवटतटे श्रीयमुनासन्निधौ गौरविनोदिनी समापितेति । (राधामाधवभाष्यं)

१० पृष्ठ में ।—सम्प्रति श्रीकृष्णचैतन्य चरणलब्धनित्या

नन्द कीज्ञाप्रसादो ऽ यं जनो ऽ चिन्त्यभेदाभेदाभिधं व्याख्यानं
विदधाति ॥

६ पृष्ठ में, - श्रीमन्माध्वमताचार्य्य श्रीराधामाधवैकजीवन
श्रीगीतगोविन्द--काव्य कर्त्ता -- श्रीप्रभुजयदेवगोस्वामी--वंशोद्भव
गोस्वामी श्रीरामरायप्रभु प्रणीत गौरविनोदिनी वृत्तिसहितइत्यादिकं
२३ पृष्ठ में -- "श्रीरामानुज शंकराचार्य्य समये ह्यस्मदाचार्य्याः
श्रीमदानन्दतीर्थपादा द्वैताख्यानं चक्रिरे शंकरविरुद्धं"

३० पृष्ठ में-- कुञ्जे श्रीनन्दिनीरूपो जगदुद्धारकारकः!

श्रीमदानन्दतीर्थाख्यौ मध्वाचार्य्यःसू मैंगतिः॥

५४ पृष्ठ में ।— श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वरसम्प्रदायाचार्य्यसार्वभौम
सारस्वतकुलाविधकौस्तुभ श्रीजयदेवगोस्वामी--प्रभुसन्तान सप्तम-
पीठाधिष्ठित--श्रीराधामाधव--पादपद्मनित्यनिकुञ्जसेवाधिकारि
श्रीचित्रासहचर्य्यवतारि श्रीप्रभुचन्द्रगोपाल--गोस्वामीपाद--प्रणीतं
श्रीराधामाधवभाष्यं ।

१०१ पृष्ठ में।--श्रीमत्सारस्वतद्विजकुलचन्द्र श्रीगीत
गोविन्द प्रणीत श्रीप्रभुजयदेव गोस्वामी सन्तान परमहंसपरिवाज-
काचार्य्य एवं श्रीनित्यानन्द प्रभुशिष्य श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वराचार्य्य
सार्वभौम सप्तम पीठाधिष्ठित--श्रीरामरायगोस्वामी मुकुता
गौरविनोदिनी वृत्तिरित्यादिकं --

और भी श्रीरामराय कृत आदिवाणी की भूमिकामें-

श्रीगीतगोविन्द काव्यकर्त्ता सारस्वत-द्विज-कुलाविधकौस्तुभ कवि
नृपचक्रवर्ती श्रीजयदेवगोस्वामी प्रभुसे ११ वीं पीढ़ी में एवं

कैलियुगपावनावतारश्रीमन्नित्यानन्दप्रभुजी के शिष्य परमहंसावतंस
 दार्शनिक सार्वभौम श्रीरामराय गोस्वामी सम्बत १५४० शाके
 १४०५ वैशाख शुक्ला ११ को प्रगट हुये थे । “आदिवाणी”
 प्राचीन तथा सर्वमान्य है । और भी रामराय की पदावली ४०००
 है । वह श्रीवल्लभकुल के मन्दिरों में प्रायशः उत्सवों पर गाई
 जाती है रामरायजी के प्रधान १२ शिष्य थे । जिनमें से भक्ति
 भगवानदास एकतम है । यह राजा भगवानदासजी वे थे जिन्होंने
 श्रीगोवर्द्धन में श्रीमानसीगंगा और श्रीहरदेवजी का मन्दिर
 बनवाया था । रामरायजी के विषयमें पदकर्ता कृष्णदास
 (द्वादशपत्न्यामें) जीने कवि परम रमिक जन मंगल छाये ।
 पुन्य अपूर्व प्रघट भये श्रीरामरायगोस्वामी मिथाये ॥
 महाप्रभु श्रीवल्लभसुत श्रीविद्वलजू की दे उपदेश मिहाये ।
 श्रीहित हरिवंस हंस संमत अति आचारज जू मित्र मिलाये ॥
 श्रीनित्यानन्दमहाप्रभु पदरज शिष्य प्रसिद्ध जगत हितु आये ।
 गोकुल ग्राम वर्ष द्वै वसि पुनि तीरथ सन्त अनन्त बनाये ॥
 भज श्रीकृष्णदास लखि परम हंस गति बहुत समें द्रगन जुड़ाये
 भगवानदासजी के पदमें ।--

जय जय श्रीजयदेव ब्रह्ममत (माध्वमत) मण्डना ।

सारस्वत द्विज मुकुट भोजकुल चन्द्रमा ॥

कृत कन्दविन्ध उद्यान शोभा सहज सरस मुहावनी ।

शुभ माघ मित श्रीपञ्चमी संक्रान्त मकर जु पावनी ॥

अनुपम मही मण्डल महोत्सव भाग्य निधि वंगावनी ।

आप परम्परा वर्णन करते हैं ।--

जयदेव सुत श्रीकृष्ण तिनके पुत्र गोविन्द जू भये ।
 तिन के मुकुन्द अनन्य तिन माधव सुवन प्रद्युम्न ये ।
 तिन बाल मोहनलाल नन्दगोपाल तिन आत्मज लये ।
 तिन तनुज गुरुगोपाल तिनके रामराय सुचन्द्र ये ।
 भगवानदास विनीत मंगल गावत करि बन्दना ॥
 जयजय ॐ जयदेव ॥

इन भगवान दास का पुत्र आमेर के राजा मानसिंह जी श्रीमहा-
 प्रभुपाषण्ड श्र रघुनाभभट्ट गोस्वामी के शिष्य थे । आपने १३ लाख
 रुपैया में अकबर बादशाह से आज्ञा लेकर लाल पत्थर से श्रीरूपगो
 स्वामीजी प्रकाशित वृ०में श्रीगोविन्ददेवजी का मन्दिर बनाया था ।
 उन्हीं दिनों में सम्बत् १६०१ से १६३१ में अकबराबाद (आगरे)
 का किला बन रहा था ।

गुरुपरम्परा

श्रीराधामाधवो देवस्तच्छिष्योऽथ चतुर्मुख ।
 श्रीनारदस्ततो व्यासो मध्वाचार्यस्ततः पुनः ॥
 तस्य श्रापद्मनाभस्तच्छिष्योऽज्ञोभ्यमुनिस्ततः ।
 जयतीर्थस्ततो मिश्र भोजदेवः प्रसन्नधीः ॥
 श्रीभोजदेवारभ्य शिष्यसुतयो रैक्यं ॥

श्रीमद्ब्रह्मगोपालगोस्वामिपर्यन्ता टिपण्या लिखिता हि लभ्यत

श्रीजयतीर्थसे--

- श्री भोजदेवमिश्र जन्म सं० ११२१
 |
 ,, जयदेवगोस्वामी ,, सं० ११७५
 |
 ,, कृष्णदेवगोस्वामी ,, सं० १२२०
 | मार्गशीर्षपूर्णिमा
 ,, गोविन्दगोस्वामी ,, सं० १२५५
 | पौषकृष्णा नवमी
 ,, सुकुन्ददेवगोस्वामी, सं० १२६१
 | कार्तिक
 ,, अनन्यदेवगोस्वामी, सं० १३२४
 | भाद्रकृष्णाष्टमी
 ,, माधवलालगोस्वामी, सं० १३६१
 | वैशाख शुक्ला सप्तमी
 ,, प्रद्युम्नगोस्वामी ,, सं० १३६५
 | आश्विन शुक्ला दशमी
 ,, हरिमोहनगोस्वामी, सं० १४३१
 | आश्विन पूर्णिमा
 ,, नन्दगोपालगोस्वामी, सं० १४७०
 | मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी
 ,, गौरगोपालगोस्वामी, सं० १५१०
 | मार्गशीर्षकृ० पञ्चमी
 ,, नित्यानन्दप्रभु के शिष्य
 ,, रामरामगोस्वामी सं० १५४०
 | वैशाख शुक्ला द्वादशी
 ,, प्रभुचन्द्रगोपाल सं० १५५२ चैत्र सुदी नवमी
 ,, रामचन्द्रप्रभु

श्रीजयतीर्थसे--

- श्री ज्ञान सिन्धु
 |
 ,, दयानिधि
 |
 ,, विद्यानिधी
 |
 ,, राजेन्द्र
 |
 ,, जयधर्म
 |
 ,, पुरुषोत्तम
 |
 ,, ब्रह्मराय
 |
 ,, व्यासतीर्थ
 |
 ,, लक्ष्मीपति
 |
 श्रीनाथजीप्रकटकारी
 प्रेमबोज
 ,, माधवेन्द्रपुरी
 |
 श्रीमन्महाप्रभु श्रीरामराय
 राधिकानाथ

श्रीजयदेवजी गोस्वामी द्वारा स्थापित भगवद् मूर्ति की प्रतिमूर्ति आज भी वृन्दावन में मौजूद है, जोकि राधामाधव के नाम से विख्यात है, श्री जयदेवजी और उनके आराध्यदेव श्री राधामाधव के सम्बन्ध में हिन्दी जगत् के सम्राट भारतेन्दु बाबू श्री हरिश्चन्द्रजी ने लिखा है —

जगत विदित जयदेव कवि सेवित चरन रसाल ।
 वृन्दावन बिलसत अजहुँ श्रीराधा माधव लाल ॥
 श्रीराधामाधव लाल विहारीजी सन्निधि लखि ।
 सेवे चन्द्र गोपाल रूप सुन्दर चित्रा सखि ॥

राम राय सम्बन्ध प्रेम वल्लभकुल सब सुखी ॥ इत्यादि श्री राधामाधव की मूर्ति जयपुर की घाठी में विराजमान है, जो कि गोविन्दजी के गोस्वामी गणों के हस्तगत है । श्रीमाध्वगौड़ीय-गोस्वामी गण तथा पुजारी गण आज भी श्रीगोविन्दजी तथा श्रीराधामाधवजी की सेवा करते आरहे हैं। “प्राचीन उत्कल” नामक ग्रन्थ जो कि उड़िया भाषा में श्रीजगन्धु सिंह जीने लिखा है उसके पृष्ठ ५५ में लिखा है कि—“जयदेवक पूजित ठाकुर राधागोविन्द मूर्ति जयपुर घाठि नामक स्थान रे अछन्ति जयदेवक मृत्यु परे जयपुर महाराज वृन्दावन केशी घाट ठारू से मूर्ति नेइ जाइथिले” । जयपुर महाराज श्रीजयसिंहजी मुसलमानों के अत्याचारों के कारण वृन्दावन से श्रीगोविन्दजी के साथ साथ जयदेव स्थापित श्रीराधा माधवजी को भी ले गये थे

वृन्दावन में अब उनकी प्रति कृति है। वृन्दावन धाम में आज भी श्रीजयदेवजी के वंशधर गोस्वामी गण हैं जो कि श्रीमाध्वसंप्रदायान्तर्गत ही हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। “चौसठ महन्तों की समाधियां” नामक स्थान वृन्दावन में एक अति प्राचीन स्थान है, जहां श्रीमाध्वगौड़ीय समस्त पूर्वाचार्यों की समाधियां हैं, उनमें श्रीजयदेवजी की समाधि भी वर्तमान है श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय में जयदेवजी को आचार्य माना जाता है और उनके “गीत गोविन्द” के “श्रित कमला कुच मंडल” आदिपद्यों का श्री माध्वगौड़ीय वैष्णव गण अपने नित्य कीर्त्तन में गाते हैं। तथा कीर्त्तन के शेष में— “जय जय राधा माधव राधा माधव राधे। जयदेवेर प्राणधन हे। जय जय राधा मदन गोपाल जय राधा” प्रभृति सब गाया जाता है। उस कीर्त्तन का नामही राधा माधव कीर्त्तन है। श्री-वृन्दावन धामस्थ गोड़ीय सप्रपीठ वर्णन के पृष्ठ ६ में लिखा है— श्रीराधा माधवेन्दु श्रितपद कमलः सप्रमो रामभद्रो राधामाधवजी” इत्यादि। इस प्रकार के सबूतों प्रमाण मौजूद हैं जिनसे कि यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि जयदेव जी श्रीमाध्वसम्प्रदायान्तर्गत ही हैं।

जयदेव ठाकुरैर वृन्दावन जाइते। अन्तरे आवेश हैल ठाकुर सहिते ॥
 ठाकुर किशोररूप स्थूल अंग भारि। केमने लइया जाव उपाय किकरि ॥
 एतेक भाविते राधामाधव कहिल। चिन्ताकि आमारे लइया वृन्दावनचल
 भुलिर भितर करि लइया जाइवे। छोटरूप हव किछु भारना लागिवे ॥

ठाकुरेर आदेश पाईया कविराज । वृन्दावन गेलेन ठाकुर भुलिमान्क ॥
 वृन्दावनधाम देखि पुलक हईला । केशीघाट सन्निधाने आनन्दे रहिला ॥
 कविराट अप्रकटे बहुकाल परे । ठाकुर लइया गेला राजा जयपुरे ॥
 अद्यावधि तथा घाटिनाम रम्यस्थाने । विराज करये चाँद मूलके बदने

(लालदामजीकृत श्रीमङ्गल ग्रन्थ-१६३ पृष्ठ प्रकाशक शर-
 चन्द्र चक्र०) देखिये पाठकों-रामरायजी का जन्म ४६३ बत्सर
 पूर्व में है गौर विनोदिनीवृत्ति ३६२ साल हो चुका समाप्त भई
 है । और निजमतसिद्धान्त १०० सालका है । और उसमें माता-
 पिता के नाम, स्थान, ग्रन्थरचनाकाल, प्रभृति नहीं मिलता है ।
 इसलिये निजमतसिद्धान्त कार के जयदेव कोई दूसरे ही हैं किन्तु
 विल्ववामी एवं गीतगोविन्द के रचयिता श्रीजयदेव तो स्पष्ट ही
 माधव (गौडेश्वर सम्प्रदायाचार्य ही हैं ।

१. आपने निम्बार्क माधुरी के पृष्ठ ५७२ पर लिखा
 है कि-आगरा के पासही ब्रजभूमि होने के कारण कविवर प्रताप-
 सिंह जी निम्बार्क सम्प्रदाय के शिष्य हुए ” देखिये पाठक !
 खूब मजे की बात है । आगरा के नजदीक ब्रजभूमि का होना
 निम्बार्क सम्प्रदाय में शिष्य होने का कारण है ये भी कोई युक्ति
 है, इस तरह तो ब्रज के चारों ओर के लोग निम्बार्क ही हो
 जायगे । अस्तु यदि ऐसा भी हो तो क्या ब्रज में दूसरी सम्प्रदाय
 नहीं थी ।

२. आपने पहिले ही पृष्ठ ६६ पर लिखा है कि-“श्री-परशुरामदेवजी का जन्म स्थान जयपुर राज्यान्तर्गत किसी ग्राम का है और जन्म सम्वत् सोलहवीं शताब्दी है। इससे विरुद्ध पृष्ठ २३ में “हरिव्यासदेवजी का जन्म १३२० के लगभग है” ऐसा लिखा है। देखिये दोनों गुरु-शिष्य में २५० वर्ष का अन्तर पड़ता है, जो त्रिकाल में भी संभव नहीं है।

३. पृष्ठ ४७६ में आपने महाकवि ‘देव’ की बात लिखी है-“की निम्बार्क सम्प्रदाय—

की उपासना और देव के काव्यन्तर्गत व प्रतिपादित उपासना सिद्धान्त के मिलान करने से प्रतीत होता है कि ये इस सम्प्रदाय के ही अनुगामी थे।” देखिये पाठक गण ! विहारी शरणजी स्वयं ब्रह्मचारी हैं और ब्रह्मचारियों की सम्प्रदाय में दीक्षित हैं और शास्त्र दृष्टि से ब्रह्मचारी को भूँठ बोलना महानुचित है, इस तरह की भूल साजियों से जबरदस्ती खेंचातानी करके निम्बार्क सम्प्रदाय का गौरव नहीं बढ़ सकता है, जानकार व्यक्ति सब जानते हैं कि विहार शरणजी ने अपनी सम्प्रदाय को सर्व श्रेष्ठ करने के लिये क्या क्या अन्तर्गत लिख दिया है, साहित्यिक प्रत्येक व्यक्ति जिसने ‘देव’ या विहारी, केशव आदि के काव्यों को पढ़ा होगा-अवश्य ही जानता होगा कि उक्त कवि महानुभाव किस शैली के हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में किसी भी आचार्य ने नायिका भेद नहीं माना है। ‘युगल शतक’ या ‘महावाणी’ वगैरह में सर्वत्र ही नित्यविहार नित्य निकुंज की

लीलाओं का वर्णन है। 'परकीया स्वकीया' आदि उच्चत्तम रस विरोधों ही इन ग्रंथों में गान्धी गाय नहीं है आत्र भी निम्बार्की लोग इन सिद्धान्तों से चिढ़ते हैं। फिर कैसे निम्बार्क सम्प्रदायी यह कह सकते हैं कि जयदेव, विद्यापति, तथा देव, विहारी, केशव आदि सब निम्बार्की थे—तबकि उक्त भाग भावों ने स्पष्ट ही 'परकीया' सिद्धान्त को स्वीकृत किया है, जो कि शास्त्र सम्मत और सर्व मान्य 'रस विशेष' है। देव के काव्यों में आप देखिये अष्ट नायि का भेद, मुग्धा मध्यादिभेद स्वकीया परकीया भेद का पूर्ण सन्निवेश है। देव के काव्य में विरह भरावड़ा है और निम्बार्क सम्प्रदाय की वाणियों में इनका लेशभी नहीं है। श्रीजयदेवजी के आधार पर विद्यापति, देव, विहारी, केशव आदि कवियों ने रचना की है और श्रीजयदेवजी निश्चय रूप से श्रीमाध्व सम्प्रदायानुयायी सिद्ध हो चुके हैं, अतएव सिद्धान्त यह है कि उपरोक्त सभी महाकवि गण श्रीमाध्वसंप्रदायानुयायी ही थे, क्योंकि इन लोगोंने इसी सम्प्रदाय के रस का आनन्द पान किया है तथा जगत को पान करा गये हैं। दूसरे अन्य इतिहासकार या हिन्दी आलोचकों की दृष्टि में भी 'देव' आदि निम्बार्की नहीं ठहरते। देखिये ब्रज माधुरी सार के पृष्ठ ४७० में—'श्रीहित कुल आश्रित' लिखा है। और पृ ४७१ में "इनके गुरु स्वामी हित हरिवांशजी थे"। इत्यादि लिखा मिलता है। ४७७-पृष्ठ पर सेनापति के चरित्र में—आप लिखदिये— "और वृन्दावन में जाकर श्रीराधाकृष्णोपासक तट्टी स्थान के

विष्णु हो गये । आजन्म सीमा से बाहिर न होने को प्रतिज्ञा की जैसे कि इन सम्प्रदाय में टट्टीस्थान का नियम है” देखिये— हम भी कहेंगे सेनापति प्रबोधानन्द सरस्वती भी परम्परा किम्बा व्यासजी का अनुयायी है क्यों कि वह सब सीमा से बाहिर नहि गये थे । वृन्दावन शतक तथा व्यासवाणी देखिये । वास्तविक सेनापति स्वतन्त्र कवि थे ।

४४८ पृष्ठ में—“श्रीभट्टजी श्रीहरिव्यासजी और स्वामी हरिदासजी आदि बहुत से रसिकाचार्य्य केशवदामजी से प्रथम ही हो चुके थे । उन्होंने अनेक ही दिव्यरस काव्य एवं वाणियों का आश्रय लेकर और अपनी उपासना सयक्त कर एवं इसी सम्प्रदाय के रसिकों की वाणी एवं साहित्य के आधार पर काव्यांगपूर्ण उपासना ग्रन्थ रसिकप्रिया निर्माण की है कविप्रिया जो अलंकार ग्रन्थ हैं ।” विहारीशरणजी के प्रमाण रहित स्वमन गठित अनुमान कोन मानेगा । केशवदासजी को भविष्य पुराण में विष्णुस्वामी-अनुयायी बताया है ।

“देववान्केशवो जातो विष्णुस्वामिमते स्थितः ।

कवि प्रियादि रचनां कृवा”४ (खण्डे २२ अ० ३४ श्लोक ३६४ पृष्ठ)

आप ४१६ पृष्ठ में । “श्रीसहचरिशरण देवजी टट्टी-स्थानाधिपति राधिकादास के शिष्य एवं प्रसिद्ध श्रीललित मोहिनीदेवजी के पर शिष्य थे । इनका जन्म सम्वत् १८२६-३० में हुआ था । १८४१ में इन्होंने शरणागति दीक्षा ग्रहण की” ।

उसके विरुद्ध— आगे ४१७ पृष्ठ में ये १६ वर्ष तक तट्टी स्थान की गद्दी को सुशोभित करके सं० १८२४ में निकुञ्ज को पधारे।' देखिये ? १८३० में जन्म, और १६ वर्ष गद्दी, अथच १८२४ में मृत्यु लिखदिये ।

४१६ पृष्ठ में — 'श्रीराधिकादासजी वृन्दावन में सं० १८६८ से १८७८ तक तट्टीस्थानकी गद्दी पर विराजने के पश्चात् निकुञ्जको पधारे देखिये गुरु राधिकादासजी का १८६८में गद्दी और १८७८ सं० में मृत्यु अथ च शिष्य सहचरिशरणजी का १८०८ में गद्दी और १८२४ में मृत्यु लिखा है । और ६७६ पृष्ठ में—ये अभयराम) श्रीनिम्बाकं सम्प्रदानुयायी किसी महात्मा के गृहस्थ शिष्य थे ।

५०८ पृष्ठ में—'ग्वालकवि निम्बार्की है' ।

५१३ पृष्ठ में "कुलपतिमिश्र को निम्बार्की" बताया है

६२७ पृष्ठ में—'इन्होंने (हेठी जी) सर्व प्रथम वृषभानुकुमारो श्रीराधिकाजी की बन्दना की है । किसी आचार्य की नहीं । और सखियों में श्रीललिताजी की प्रधानता रखी है । बंदना में भी इन्हीं का नाम है । इससे भी विदित होता कि ये स्वामी श्रीहरिदासजी के ही परम्परानुजायी किसी वैष्णव के शिष्य थे । मिश्रबन्धु विनोद में श्रीराधावल्लभीय कवियों कि अधिकता होने का कारण कवि परिचय लेखकों में प्रथा ही है जो कवि अपने ग्रन्थ में श्रीराधिजी की बन्दना किये उन्हें श्रीराधावल्ल

भीय लिख देते । निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीराधिका उपासना बहुत उँची है । यहाँ के तद्वत् श्रीराधाकी महत्ता और स्थानमें नहीं । श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय का कविता क्षेत्र बहुत ही व्यापक है श्रीराधा कृष्ण विहार दिव्य रसके सर्व प्रथम प्रचारक श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय ही है ।” ६४८ पृष्ठ में - “ब्रजसरदल में श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायकी व्यापकता प्राचीनकाल से पाई जाती है । यही सम्प्रदाय ब्रजवासियों की परम्परा प्राप्त स्वधर्म है । एक इसी सम्प्रदाय के तिलकको ब्रजवासियों ने अनभिज्ञ और स्वसिद्धान्त परिचय रहित अवस्था में भी अपनाया ”

पाठक गण ! उपरोक्त विषय पर ध्यान दीजिये, कैसी सार हीन बातें हैं, निम्बार्क माधुरी वार ने शेखचिल्ली की कहानी लिखकर जनता की आँखों में धूल भोंकी है । वे मेल और वेतुकी बातों से प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती । ऊपर श्रीहठीजी के सम्बन्ध में उनके निम्बार्की होने का दावा करने वाले विहारी शरणजी से हम जोर देकर कहते हैं कि वे हठी जी के निम्बार्की होने के सम्बन्ध में प्रमाण उपस्थित करें-अन्यथा उनकी इस कपोल कल्पना का कोई मूल्य नहीं ? । उन्होंने ग्रन्थारम्भ में राधिकाजी की वन्दना की है ललिताजी की प्रधानता रखी है-इन्हीं कारण से वे हरिदासजी के अनुयायी वैष्णव के शिष्य होगये-कैसी हास्यास्पद युक्ति है, मानों तो राधिकाजी और ललितादि जी की वन्दना करने वाले सब निम्बार्की ही होते हैं-शायद श्रीहरिदासजी के अनुयायी वैष्णवों ने सरकार से इस बात

का ठेका लेलिया होगा कि जो कोई राधिका आदि की बंदना करेगा-वह निम्बार्की समझा जायगा। निम्बार्क सम्प्रदाय की राधा उपासना बहुत ऊंची है, तद्वत् राधा की महत्ता अन्य स्थान में नहीं इत्यादि बातें केवल-“अपने मुखमियाँ मिट्टू”के सिवाय और कुछ नहीं है। श्रीहठी जी को सभी इतिहासकारों ने श्रीराधावल्लभीय सिद्ध किया है यही ठीक भी है, राधावल्लभी माध्व के अनुयायी थे यह इतिहासकारों ने माना है। और माध्व गौड़ेश्वर की लोकातीत दिव्य श्रीराधा उपासना चिरकाल से अर्थात् महाप्रभु से भी पहले से जयदेव आदि से अविच्छिन्न रूप से धारा चली आरही है।

विहारी शरणजी के इस दावे पर तो हमें बड़ा आश्चय होता है कि—“ब्रज में निम्बार्क सम्प्रदाय की व्यापकता प्राचीन काल से पाई जाती है, तथा यह सम्प्रदाय ब्रजवासियों की परम्परा प्राप्त स्वधर्म है”। पाठक महोदय ! संस्कृत का प्राचीन इतिहास तथा अंग्रेजी के प्राचीन इतिहास और हिन्दी का प्राचीन इतिहास सभी इस विषय में प्रमाण हैं कि ब्रजभूमि का पुनरुद्धार गौड़ीय गोस्वामी गण (रूप सनातन वगैरह) ने ही किया है। समय पर हम इसके सब प्रमाण उपस्थित करेंगे। जानकार एवं पढ़े लिखे लोग सब जानते हैं और आज प्रत्यक्ष में भी मौजूद है कि वृन्दावन के ७ सात देवालय ही वृन्दावन के राजा हैं, माध्वगौड़ीय गोस्वामी गणोंने इन्हीं मन्दिरों की सर्व प्रथम वृन्दावन में स्थापना की और वृन्दावन रहस्य को प्रगट किया। दूसरे चौरासी कोस

के तीर्थों का श्रीगोवर्धन राधाकुण्ड, बरसाना, नन्दगांव आदि स्थलों की प्राचीन मन्दिर मूर्तियों के संस्थापक श्रीमाध्वगौड़ीय वैष्णव ही हैं—आजभी इन सब स्थलों पर माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय का ही पूर्ण प्रकाश है, ब्रज के छोटे बड़े ग्रामों में श्रीमहाप्रभु गौरांगदेव अनुयायी गौड़ीय वैष्णवों की सैकड़ों भजन स्थली, समाधि, उनके द्वारा प्रघटित लीला स्थान मौजूद हैं। ब्रज की रासलीला का प्रागट्य करने वाले श्रीनारायणभट्टजी ने जो कि माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायमें एक प्रधानआचार्य हैं अपने ब्रजभक्ति विलास नामक ग्रन्थ में ब्रज के प्रत्येक गाँव की लीला का वर्णन और उनके स्वरूप का वर्णन किया है—वह ऐसे सुन्दर अद्भुत वर्णन हैं कि जिन्हें विहारीशरणजी ने समझाभी न होगा। पुराने ब्रजवासियों की कथावतों में तथा उनके पूर्वजों में सभी बातें गौड़ीय वैष्णवों की छाप की मिलती हैं—हां ! अब कुछ समय से ब्रज के जहां तहां के ब्रजवासी प्रायः स्वार्थ के कारण अन्य अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित होगये हैं।

अतः विहारी शरणजी द्वारा लिखित अनर्गल वात के चक्कर में नहीं आना चाहिये।

आप ६११ पृष्ठ में नागरीदास (कृष्णगढ़राजा) जी के चरित्र में लिखदिये है। कि “सम्भव है इन्हें प्रथम वाल्यावस्था में वल्लभकुल सम्प्रदाय की भी किसी वैष्णव से शिक्षा मिलि हो किन्तु जब इनके हृदय में अति वैराग्य उत्पन्न हुआ और

व्यवहारिक भ्रंश परित्याग कर श्रीवृन्दावन वास करने की इच्छा हुई तब इन्होंने रूपनगरके निकटस्थित श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायकी गद्दी परशुरामपुरी (सलेमावाद) के आचार्य श्री-गोविन्ददेवजी से विरक्त दीक्षा ले ली थी। छत्रकुवरि जी भी इनके कुलमें प्रसिद्ध कान्यकृता हैं श्रीगोविन्ददेवजी का शिष्या थी। इनके एक घरकी लौंडी भी निम्बार्कीय थी। जिनका नाम बनीठनी है। ६१२ पृष्ठ में। “इनको वृन्दावन वास में अत्यन्त दृढ़ अटूट निष्ठा थी जैसा कि किसी वल्लभकुली आचार्य तथा भक्तों का नहीं हुई और न किसीने इनके समान वृन्दावन तत्त्वका वर्णन ही किया है। वृन्दावन निष्ठाके प्रति निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य जैसी दृढ़ता दिखाये हैं वैसी अन्यत्र नहीं”। ६१३ पृष्ठ में। “इनके ग्रन्थ श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के बहुत ही मेल खाना है। उपासना भाव एवं श्रृंगारिक केलि वर्णन से तो वे अभिन्न हैं।

विरक्त होने पर इन्होंने बहुत कम कविता की है”। पाठक गण ! देखिये-आप अपनी चाणी द्वारा नागरी दासजी को वल्लभसम्प्रदायी सिद्ध कर रहे हैं। जब विरक्त होने पर प्राय कोई ग्रन्थ नहीं बनाये तो निम्बार्कीय ग्रन्थों का साथ कैसे मिलेगा कारण आप पहिले ही कहि चुके हैं कि बाल्यावस्था में किसी वल्लभवैष्णव से शिक्षा मिली है। तो ग्रन्थ अवश्य वल्लभ मतानुयायी होना चाहि है। “व्रजनिष्ठा अन्यत्र नहीं है” यह केवल अत्युक्ति मात्र है। वास्तविक नागरीदासजी वल्लभमतानुयायी हैं।

ब्रजमाधुरी सार १८३ पृष्ठ में—“नागरीदासजी वल्लभ कुल के गोस्वामी रणछोड़जी के शिष्य थे। रणछोड़जी श्रीवल्लभाचार्यजी की पांचवी पीढ़ी में आते हैं। यह गद्दी कोटा की है। नागरीदास जी के सेव्यठाकुर श्रीकल्याणरायजी थे। पर बाहर साथमें श्रीनृत्य गोपाल के स्वरूप रग्वते थे।

आज भी कृष्णागढ़ में श्री कल्याणराय और नृत्यगोपाल के स्वरूप विराजमान हैं।” नागरसमुच्चय भूमिका में—जन्म सम्बत १७५६ पौष कृष्णा द्वादशी को हुआ है। रणछोड़जी का जन्म सं० १७७७ ज्येष्ठ कृष्णा ५ है। नागरीदासजी का गुरु जो कि महाराज श्री रुपसिंहजी के गुरु गोस्वामी दीक्षित जी गोपीनाथ जी थे। जिनके प्रपौत्र गोस्वामी श्री रणछोड़ जी नागरीदास जी के गुरु थे। इनका स्थान कोटें में श्री वड़े मथुरेश जी का है। और श्री रुपसिंह जी से लेकर अबतक उसी स्थानके शिष्य होते हैं। ११-१२ पृष्ठ में—और इन्हीं रुपसिंहजी ने वल्लभाचार्यजी के उस चित्रको जो बादशाह अकबर ने बनाया था जो बादशाह शाहजहाँ से मांग लिया था। यहचित्र अद्यपि यद्वा है, कल्याण राय जी का समीप सेना में विराजित है।” भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी कहते हैं कि—

“वल्लभ पथ हिं द्वादश कृष्णागढ़ राज हिं छोड़्यो।” इत्यादि। ६१५ पृष्ठ में कहते हैं—“वृन्दावन में उस समय वल्लभाचार्यजी की गद्दी की पाँचवीं पीढ़ी थी।” इसके विपरीत सम्पादक जी लिखते हैं कि—“वृन्दावन में उस समय वल्लभा-

चार्यजी की गद्दी थी न होय ये निम्बार्क सम्प्रदाय की गद्दी के स्थान नागर कूज में रहते थे स्वयं भी लिखते है कि (६१४ पृष्ठ) श्रीवृन्दावन में कोई वल्लभकुली गद्दी नहीं है नवँहा कोई रणछोड़ दासजी गद्याधेश ही हुए हैं जिन्हे इनका गुरु वतजाते है। परस्पर विरोध बात से विहारीशरणजी की केवल इर्ष्या ही सूचित होती है।

६१४ पृष्ठ में आप कहते है कि—“विरक्तअवस्था चित्र भी नागरसमुच्चय में छपा है जो ज्ञानसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित है। उसमें स्पष्ट निम्बार्क तिलक है।” यह भी मिथ्या है। जब विरक्त होने का पहिले ही नागर समुच्चय बनाये थे तो वल्लभकुली की तिलक होना चाहि है। विरक्त वेश में तिलक का परिवर्तन नहीं होता है। और एक सम्प्रदाय को परित्याग कर अन्य सम्प्रदाय में से विरक्त दीक्षालेना सदाचार विरुद्ध है। अतः नागरीदासजी को निम्बार्क सिद्ध करना केवल सम्प्रदाय खेच टान है किम्वा सम्प्रदाय तन्मयता है।

देखिये ब्रजभारती में राधेश्यामद्विवेदी १३ पृष्ठ वि०- १६६६ वर्ष २ कार्तिक अङ्क १-में कहें कि “नागरीदासजी ने सं० १७८० से काव्यग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया। और सं० १८१६ तक लगभग ७५ काव्यग्रन्थ रचे। ये वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य श्री-गोस्वामी रणछोड़ायजी महाराज कोटा के शिष्य थे। “स्वयं विहारीशरणजी ने भी “मुकुट की लटक” नामक पुस्तक में

नागरीदासजी को वल्लभसम्प्रदायी माना है । १३ पृष्ठ में नागर-समुच्चय का दो प्रमाण उठाकर १४ पृष्ठ में कहते हैं कि-ये वल्लभकल के आचार्य एवं प्रसिद्ध भक्त कवियों के मुख कमल द्वारा निकले हुये शब्द के प्रमाण है किन्तु निम्बार्क माधुरी में निम्बार्की बता रहे हैं इस प्रकार परम्पर विरोध होनेका कारण यह सब गिर्या जल्पना मात्र है । पुस्तक का कलेघर वृद्धि होने का कारण दो चार मात्रदोष पाठकगणों का साक्षात्करना हूँ (स्थूल दृष्टि से) सूक्ष्म विचार करने पर अख्य दोषों का सन्निवेश हो सकता है, अब मैं इहाँ पर विश्राम लेता हूँ । पाठकगण ! कृपया अवश्य पढ़ें और वास्तविक वस्तु का अनुसन्धान करें । कोई सन्देह की बात होय तो मुझको लिखें मैं यथा शक्ति अवश्य उत्तर देऊँगा । और अन्तमें श्रीमान् विहारीररणजी को प्रार्थना करता हूँ कि एतादृश मिथ्याप्रचार न करे, न कोई से करावे ।

विनीत—

कृष्णदास, कुसुमसरोवर, (गावर्द्धन)

श्रीमान्प्रोफेसर, चन्द्रप्रसादसिंह, युवराजदत्त कातेज, लक्ष्मीपुर अपनी सम्भति इस प्रकार देते हैं:—

“निम्बार्क माधुरी को मैं पूर्णरूप से अप्रमाणिक मानता हूँ । उसकी किसी भी बात पर मेरी निष्ठा नहीं न किसी विवेक-बान् की हो सकती है । जो उसके निराकरण के लिए आप लोग जो भी करें उचित ही है ।”

नोट—कुछ खेदकी बात यह है कि बिना जाने कोई ने गीताप्रेस कल्याण वेदान्तांक ६६७ पृष्ठ में लिख दिया कि—

”आचार्य विश्वनाथचक्रवर्ती का जन्म बंगाल में हुआ था। वह १८ वीं शताब्दी में वर्तमान थे। वह निम्बार्कमता-वलम्बी थे उन्होंने श्रीमद्भागवत की टीका लिखी है जिसका निम्बार्क सम्प्रदाय में बड़ा आदर है।” इत्यादि

यह सर्वांश में भ्रमात्मक जानना, क्योंकि चक्रवर्ती जी माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय में श्रीमन्महाशु जी के चरणानुगत मुख्यतम आचार्य हैं। श्रीचक्रवर्ती जी का मत में अचित्यभेदा-भेद सिद्धान्त तथा ब्रजसम्बन्धी परकीया भाव की उपासना है। निम्बार्क सम्प्रदाय में स्वाभाविक भेदाभेदतत्त्व, तथा नित्यविहार की उपासना है। मैंने इस विषय में मान्यवर कल्याण के सम्पादक महाशय के पास एक पत्र भेजा था। आप सज्जन हैं, तथा सत्यवस्तु के ग्राहक हैं। आपने स्वीकार कर लिया कि आगे जब वेदान्तांक फिर छपेगा तब उसमें त्रुटीपत्र लिख दिया जावेगा। अतः चक्रवर्ती जी कस्मिन् काल में निम्बार्की नहीं हैं। कोई शंका करे तो पत्रादि द्वारा किम्वा सभादि द्वारा विचार कर सकते हैं। — (कृष्णदास)

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी वी गुरु परम्परा पाठनों के सामने उपस्थित करते हैं:—

- १ श्रीमन्नारायण, २ श्रीब्रह्मा ३ श्रीनारद, ४ श्रीवेदव्यास, ५ श्रीमध्वाचार्य, ६ श्रीपद्मनाभ, ७ श्रीनरहरि, ८ श्रीमाधव ९ श्रीअक्षोभ, १० श्रीजयतीर्थ, ११ श्रीज्ञानमिन्धु, १२ श्रीमहानिधि १३ श्रीविद्यानिधि, १४ श्रीराजेन्द्र, १५ श्रीजयधर्म, १६ श्रीब्रह्मण्य, १७ श्रीपुरुषोत्तम, १८ श्रीव्यासतीर्थ, १९

श्रीलक्ष्मीपति, २० श्रीमाधवेन्द्र २१ श्रीईश्वरपुरी

२२ श्री राधाकृष्णमिलित विग्रह

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य

महाप्रभु

२३ श्रीश्रीलोकनाथ गोस्वामी (मञ्जुलाली)

२४ श्रीश्रीनरोत्तमठाकुर महाशय

२५ श्री गंगानारायणचक्रवर्ती ठाकुर

२६ श्रीकृष्णचरण चक्रवर्ती ठाकुर

२७ श्रीराधारमण चक्रवर्ती ठाकुर

२८ श्रीश्री विश्वनाथ चक्रवर्तीजी

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तक सम्

१. माधुरीबाणी (माधुरीजीकृत)
२. मोहिनीबाणी (गदाधरभट्टजी की)
३. सुहृत्बाणी (सूरदाममदनमोहनजी की)
४. अर्चविधि
५. रासलीलानुकरण और श्रीनारायणभट्टजी
६. नम्रनिवेदन और कुछ समीक्षा ।
७. प्रेमसम्पुट [श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीकृत]

रूप

प्रकाशित होने वाले:—(देवनागरी में)

१. भक्तिरसतरंगिणी [श्रीनारायणभट्टजी कृत]
२. ब्रजभक्ति विलास [श्री नारायणभट्टजी कृत]
३. गोविन्दभाष्य [श्रीबलदेव विद्याभूषण कृत]
४. बल्लभरसिकबाणी [बल्लभरसिकजी कृत]
५. भक्तिग्रन्थावली [श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत]

“नम्र निवेदन और कुछ समीक्षा” मिलने का ठिकाना

१. बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर राधाकृष्ण जि० मथुरा
२. बाबा रामदासशास्त्री, चारसम्प्रदाय छावनी वृन्दावन, म
३. गो०प्रियालालजी वरसाना, मथुरा

मुद्रक:—

हरि मोहन इ० प्रिंटिंग वर्क्स, पुरानी-
बस्ती, जयपुर ।